वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

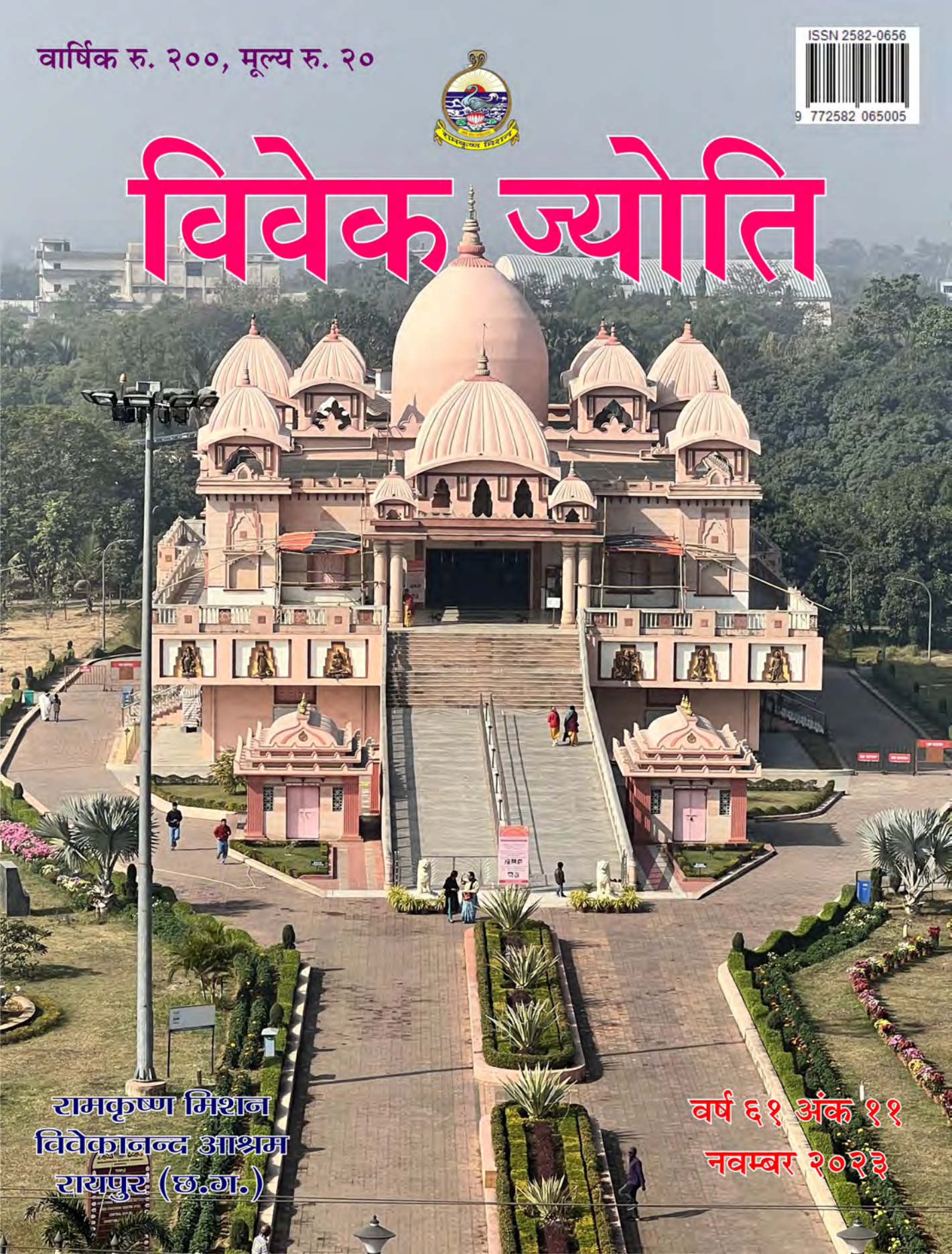

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६१ अंक ११
नवम्बर २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक ११

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

कार्तिक, सम्वत् २०८०

नवम्बर, २०२३

अनुक्रमणिका

* कुमारियों को धर्मपरायण और नीतिपरायण बनाना होगा : विवेकानन्द ५५८
* काली का स्वरूप और रूप (स्वामी अलोकानन्द) ५६१
* क्रोध से शान्ति की ओर (स्वामी ओजोमयानन्द) ५६८
* (बच्चों का आंगन) बिलासपुर नाम कैसे पड़ा? (श्रीमती मिताली सिंह) ५७२
* (युवा प्रांगण) सबल और सशक्त युवा (स्वामी गुणदानन्द) ५७६
* सत्संग माने स्नान करके शुद्ध होना है (स्वामी सत्यरूपानन्द) ५७८
* काली-नाम साधना : तत्त्व विमर्श (उत्कर्ष चौबे) ५८०
* कामाख्यासूक्तम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ५८३
* रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि (स्वामी पररूपानन्द) ५८८
* (कविता) एक दीप जला दो (आनन्द तिवारी 'पौराणिक') ५६४
* (कविता) काली काली मैं भजता हूँ (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५८३

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५५७
पुरखों की थाती ५५७
सम्पादकीय ५५९
रामराज्य का स्वरूप ५६५
गीतातत्त्व-चिन्तन ५७३
प्रश्नोपनिषद् ५७९
श्रीरामकृष्ण-गीता ५८४
सारगाछी की स्मृतियाँ ५८५
साधुओं के पावन प्रसंग ५९४
समाचार और सूचनाएँ ५९७

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध- में

यह मन्दिर रामकृष्ण मिशन आश्रम, आसनसोल, पश्चिम बंगाल का है, जिसका उद्घाटन २० जनवरी, २०१९ को श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज के पुण्य जन्म तिथि के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और मिशन के परमाध्यक्ष स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने किया।

नवम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

१२	लक्ष्मी पूजा, दीपावली
२१	जगद्धात्री पूजा
२४	स्वामी सुबोधानन्द
२६	स्वामी विज्ञानानन्द
९, २३	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	8,401/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

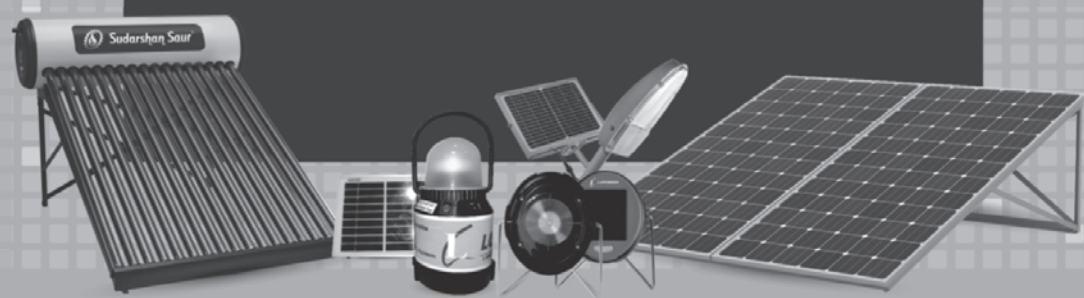

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ **नवम्बर २०२३** **अंक ११**

श्रीकालिका-ध्यानम्

मेघाङ्गीं विगताम्बरां शवशिवारूढ़ां त्रिनेत्रां परां
कर्णालम्बिनृमुण्डयुग्मभयदां मुण्डस्रजां भीषणाम्।
वामाधोर्ध्वकराम्बुजे नरशिरः खड्गं च सव्येतरे
दानाभीति विमुक्तकेशनिचयां वन्दे सदा कालिकाम्।।

– मेघवर्णा, दिगम्बरा, शव रूप में शयन किये हुये शिव पर अधिष्ठिता, त्रिनयना, आद्याशक्ति, कर्णद्वय में विलम्बित नरमुण्डद्वय धारणपूर्वक भय प्रदायिनी, मुण्डमालिनी, भयंकरी, निम्न तथा ऊर्ध्व दक्षिण करकमलद्वय में यथाक्रम वर मुद्रा तथा अभयमुद्राधारिणी, मुक्तकेशी कालिका देवी की मैं सर्वदा वन्दना करता हूँ।

पुरखों की थाती

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गंगो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते।।८११।।
(विदुर)

– जो व्यक्ति सम्मान पाकर खुशी से फूल नहीं उठता, अनादर होने पर क्रोध से जल नहीं उठता और जिसका मन गंगाजी के कुण्ड के समान शान्त रहता है, वही ज्ञानी कहलाता है।

नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयः।
विनयो हीन्द्रियजयः तद्युक्तः शास्त्रमृच्छति।।८१२।।

– विनय ही नीति का मूल है, विनय की महिमा शास्त्रों में भी बताई गई है। विनय-भाव ही इन्द्रियों पर विजय पाने में सहायक है। इस विनय से सम्पन्न व्यक्ति ही शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करता है।

नात्यन्तं गुणवत् किंचित् न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्।
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा।।८१३।।

– कोई भी कार्य ऐसा नहीं जो पूरी तौर से उत्कृष्ट हो और कोई कार्य ऐसा भी नहीं जो पूरी तौर से निकृष्ट हो। भले-बुरे सभी कार्यों में (उत्कृष्टता और निकृष्टता) दोनों ही दीख पड़ते है।

कुमारियों को धार्मिक और नैतिक बनाना होगा : विवेकानन्द

यह तो विलायती ढंग पर हो रहा है। तुम्हारे धर्मशास्त्र और देश की परिपाटी के अनुसार क्या कहीं भी कोई पाठशाला है? स्त्रियों की बात तो जाने दो; इस देश के पुरुषों में भी शिक्षा का विस्तार अधिक नहीं है। इसी कारण सरकारी आँकड़ों में जब देखा जाता है कि भारतवर्ष में प्रतिशत केवल दस-बारह लोग ही शिक्षित हैं तो अनुमान होता है कि स्त्रियों में प्रतिशत एक भी शिक्षिता न होगी। यदि ऐसा न होता, तो देश की ऐसी दुर्दशा क्यों होती? शिक्षा का विस्तार तथा ज्ञान का उन्मेष हुए बिना देश की उन्नति कैसे होगी? तुम में से जो शिक्षित हैं और जिन पर देश की भावी आशा निर्भर है, उनमें भी इस विषय की कोई चेष्टा या उद्यम नहीं पाया जाता। स्मरण रहे कि सर्वसाधारण में और स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुए बिना उन्नति का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कुछ ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ बनाने की मेरी इच्छा है। ब्रह्मचारी समय पर संन्यास लेकर प्रांत-प्रांत में, गाँव-गाँव में जायेंगे और जन समुदाय में शिक्षा का प्रसार करने का प्रबंध करेंगे और ब्रह्मचारिणियाँ स्त्रियों में विद्या का प्रसार करेंगी। परन्तु यह सब काम अपने देश के ढंग पर होना चाहिए। पुरुषों के लिए जैसे शिक्षा-केन्द्र बनाने होंगे, वैसे ही स्त्रियों के निमित्त भी स्थापित करने होंगे। शिक्षित और सच्चरित्र ब्रह्मचारिणियाँ इन केन्द्रों में कुमारियों को शिक्षा प्रदान करेंगी। पुराण, इतिहास, गृहकार्य, शिल्प, गृहस्थी के सारे नियम आदि वर्तमान विज्ञान की सहायता से सिखाने होंगे तथा आदर्श चरित्र-गठन करने के लिए उपयुक्त आचरण की भी शिक्षा देनी होगी। कुमारियों को धार्मिक और नैतिक बनाना पड़ेगा, जिससे वे भविष्य में अच्छी गृहिणियाँ हों, वही करना होगा। इन कन्याओं में जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह इन विषयों में और भी उन्नति कर सकेगी। जिनकी माताएँ शिक्षित और नीतिपरायण हैं, उनके ही घर में बड़े लोग जन्म लेते हैं। वर्तमान समय में तो स्त्रियों को काम करने का यन्त्र-सा बना रखा है। राम ! राम !! तुम्हारी शिक्षा का क्या यही फल है? वर्तमान दशा में स्त्रियों का प्रथम उद्धार करना होगा। सर्वसाधारण को जगाना होगा, तभी तो भारत का कल्याण होगा।

देखो, कहाँ इनकी जन्मभूमि! सर्वस्व त्याग किया है। तथापि यहाँ लोगों के मंगल के लिए कैसा प्रयत्न कर रही हैं ! स्त्री के अतिरिक्त और कौन छात्राओं को ऐसा निपुण कर सकता है? सभी प्रबन्ध अच्छा पाया, परन्तु गृहस्थ पुरुष शिक्षकों का वहाँ होना मुझे उचित नहीं जान पड़ा। शिक्षित विधवा या ब्रह्मचारिणियों को ही पाठशाला का कुल भार सौंपना चाहिए। इस देश की नारी-शिक्षण-संस्थाओं में पुरुषों का संसर्ग बिल्कुल ही अच्छा नहीं।

शिष्य – किन्तु महाराज, इस देश में गार्गी, खना, लीलावती के समान गुणवती शिक्षिता स्त्रियाँ अब पायी कहाँ जाती है?

स्वामीजी – क्या ऐसी स्त्रियाँ इस देश में नहीं हैं? अरे, यह देश वही है जहाँ सीता और सावित्री का जन्म हुआ था। पुण्यक्षेत्र भारत में अभी तक स्त्रियों में जैसा चरित्र, सेवाभाव, स्नेह, दया, तुष्टि और भक्ति पायी जाती है, पृथ्वी पर और कहीं ऐसी नहीं है। पाश्चात्य देशों में स्त्रियों को देखने पर कुछ समय तक यही नहीं ठीक हो पाता था कि वे स्त्रियाँ हैं, देखने में ठीक पुरुषों के समान थीं। ट्रामगाड़ी चलाती हैं, दफ्तर जाती हैं, स्कूल जाती हैं, प्रोफेसरी करती हैं ! एक मात्र भारत ही में स्त्रियों में लज्जा, विनय इत्यादि देखकर नेत्रों को शान्ति मिलती है। ऐसे योग्य आधार के प्रस्तुत होने पर भी तुम उनकी उन्नति न कर सके। इनको ज्ञानरूपी ज्योति दिखाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया ! उचित रीति से शिक्षा पाने पर ये आदर्श स्त्रियाँ बन सकती हैं।

सम्पादकीय

काली-ज्योति जले जन-मन में

हे माँ काली ! तेरी महिमा अपार है। हे माँ, तुम अनन्तरूपिणी हो, तेरे स्वरूप को देव भी नहीं समझ पाते, अन्य की तो बात ही क्या है? लेकिन जिस भक्त के हृदय में कृपा करके जब तुम अपने रूप को प्रकट कर देती हो और स्वरूप का बोध करा देती हो, तब तुझे समझना किंचित् सुगम हो जाता है।

हे कालस्वरूपिणी, काल अधिष्ठात्री माँ काली ! जब तक जीव तेरे दिव्य ज्योतिर्मय रूप को छोड़कर संसार के अन्य रूपों में निमग्न रहता है, तब तक दुखरूपिणी देवी उसको दुख:माला पहनाती रहती है और वह सदा दुखी रहता है, कष्ट भोगता रहता है, अपने भाग्य और संसार को कोसता रहता है, किन्तु तेरी ओर अग्रसर नहीं होता। उस जीव का कितना दुर्भाग्य है कि वह तेरी जैसी कृपालु, सुतवत्सला माँ के रहते प्रेम और सुख के लिए संसार से भीख माँगता रहता है, इस आशा में इधर-उधर भटकता रहता है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है माँ !

हे माँ ! जब तक तुम अपने कृपा-कटाक्ष से सबके मन में अपनी ज्ञान-ज्योति, प्रेम-स्नेह-ज्योति, सुख-शान्ति और आनन्द की ज्योति नहीं जला देती, तब तक प्राणी कभी सुख-शान्ति और आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता। यह बात स्थूल, विषयी, स्वार्थी बुद्धि से भी समझ में आती है, लेकिन यह सब जानने के बाद भी मानव तेरी ओर अग्रसर नहीं होता है, तो इसमें किसका दोष है माँ?

भारत में दिवाली कार्तिक मास की अमावस्या को मनायी जाती है। इस दिन उत्तर प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में लक्ष्मीजी की पूजा भी की जाती है। बंगाल में दिवाली के दिन माँ काली की पूजा की जाती है। माँ काली के कई रूपों में एक दक्षिणा काली है, जिनकी पूजा होती है। माँ का रूप भयंकर होते हुये भी अपनी सन्तानों के लिये वात्सल्यसुलभ ममत्व और करुणा से परिपूर्ण है। इसलिये माँ का पुत्र कभी माँ के भयंकर रूप से नहीं डरता है।

काली ज्योतिर्मयी हैं

माँ काली का वर्ण श्याम या काला है, ऐसा लोकप्रथित है। किन्तु साधकों ने जिन्होंने माँ काली का अपने अन्त:करण में दर्शन किया, उन्होंने ज्योतिर्मयी माँ का दर्शन किया। माँ काली का काले वर्ण में भी ज्योतिर्मय भव्य दिव्य रूप है, जो भक्तचित्त को बरबस आकर्षित करता है। साधक कमलाकान्त की दृष्टि में तो माँ काली का कोई रूप ही नहीं है। वे अपने प्रसिद्ध काली-भजन में लिखते हैं –

श्यामा माँ क्या मेरी काली रे।
लोग कहे काली काली, पर मन न कहे वह काली रे।।
कभी श्वेत, कभी पीली, कभी लाल, कभी नीली।
मैंने नहीं जानी कैसी है जननी, जन्म गँवाया खाली रे।।

कमलाकान्त की दृष्टि में माँ काली का कोई रूप ही नहीं है, वह कभी श्वेत, कभी पीली, कभी नीली, कभी लाल और कभी रंगहीन रहती हैं। अन्त में वे समझ नहीं पाते कि वे कैसी हैं। माँ की लीला को नहीं समझने के कारण उन्हें अपना जीवन व्यर्थ प्रतीत होता है।

किन्तु श्याम वर्णमयी काली की पूजा ही अधिकांश देखने को मिलती है। माँ काली श्याम वर्ण में भी उज्ज्वल और देदिप्यमान हैं। जिस भक्त के हृदय में ऐसा भव्य ज्योतिर्मय रूप प्रकट होता है, उसके पाप-ताप-दुख-द्वन्द्व सभी मिट जाते हैं, वह परम आनन्द का अधिकारी हो जाता है। कमलाकान्त कहते हैं – काली रूप दिगम्बरी हृदि पद्म करे आलो रे।। अर्थात् दिगम्बरी कालीवर्णी काली हृदय-कमल को प्रकाशित कर देती है। अत: जब तक काली का ज्योर्तिमय रूप जन-मन में प्रकट नहीं होता, तब तक उनके दुखों का अवसान नहीं होगा और दुखों के अवसान बिना सुख प्राप्त नहीं होगा।

काली ब्रह्मस्वरूपिणी हैं

आद्याकाली ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। कामाख्यातन्त्र में कहा गया है –

या देवी कालिका माता सर्वविद्यास्वरूपिणी।
कामाख्या सैव विख्याता सत्यं देवि न चान्यथा।
कामाख्या सैव विख्याता सत्यं देवि न संशय:।।
सैव ब्रह्मेति जानीहि यथार्थं दर्शनानि च।।

– अर्थात् जो सर्वविद्यास्वरूपिणी देवी कालिका माता

हैं, वही कामाख्या हैं, यह सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है और वही ब्रह्म हैं। इस प्रकार माँ काली ब्रह्म हैं। ब्रह्म सच्चिदानन्दमय है। ब्रह्म सहस्रोज्ज्वल स्निग्ध ज्योतिस्वरूप है। इस निर्गुण-निराकार अखण्ड ब्रह्म की उपासना सर्वजनसुलभ नहीं होती या सबके लिये सम्भव नहीं होता, किन्तु वही ब्रह्म जब सज्जनों, भक्तों के लिये करुणामयी माँ बनकर और दुर्जनों, अत्याचारियों के लिए भयंकर काली के रूप में प्रकट होता है, तब उसका वह भयंकर रौद्र श्याम वर्ण भी मंगलकारी प्रतीत होता है। रणभूमि में उस भयानक रौद्र रूप में भी श्यामांगी माँ काली के शरीर से ज्योति निकलती रहती है, मानो बिजली चमक रही है। ऐसी ज्योतिर्मयी हमारी माँ काली हैं !

योगिनीतन्त्र में भी माँ काली को ज्योतिस्वरूपिणी कहा गया है –

या सुषुम्नान्तरालस्था चिन्त्यते ज्योतिरूपिणी।
प्रणतोऽस्मि परां धीरां कामेश्वरि नमोऽस्तुते।।

रामप्रसन्न कहते हैं – समर-भूमि में तिमिरवर्णी काली तिमिर का, अन्धकार का नाश कर रही है और हुंकार भरकर नृत्य कर रही है, ऐसा लगता है, जैसे बिजली चमक रही हो। मातृसंगीत के रचनाकार कवि नन्दकुमार कहते हैं – 'हे माँ, तू तत्त्वाकाश में मानो सौदामिनी के समान विराजमान है।[१] काली भक्तप्रवर रामप्रसाद का वह काली-संगीत भी स्मरणीय है, जिसमें वे कहते हैं – 'काला रूप तो अनेक है, पर यह बड़ा आश्चर्यजनक काला रूप है, जिसे हृदय में रखने पर हृदय रूपी कमल आलोकित हो जाता है।'

भगवान श्रीरामकृष्ण देव जब दक्षिणेश्वर में माँ काली के दर्शन हेतु व्याकुल होकर आर्त पुकार करने लगे, तब माँ काली ने उन्हें ज्योतिर्मय रूप में ही दर्शन देकर उनके हृदय की मातृ-वियोग-ज्वाला को शान्त किया था। उनके इस दर्शन का वर्णन स्वामी सारदानन्द जी ने विस्तृत रूप से श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में किया है, जिसका सारांश यहाँ प्रस्तुत है। माँ का दर्शन नहीं होने के कारण श्रीरामकृष्ण देव जब अपनी जीवन-लीला समाप्त करने को उद्यत हुये, तभी उन्हें माँ का विलक्षण दर्शन हुआ। वे अचेत होकर गिर पड़े। कैसे दो दिन बीत गये, उन्हें पता ही नहीं चला। किन्तु उनके हृदय में एक अद्‌भुत घनीभूत आनन्द-स्रोत प्रवाहित हो रहा था और उन्होंने माँ के साक्षात् प्रकाश की उपलब्धि की थी। उपरोक्त दर्शन के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं विस्तार से बताया था – ''घर-द्वार, मन्दिर ये सब न जाने कहाँ विलुप्त हो गये। मानो कहीं कुछ भी नहीं था। मुझे एक अनन्त, असीम, चेतन ज्योति-समुद्र दिखायी देने लगा। जिधर जहाँ तक मैं देख रहा था, उधर ही चारों ओर से गरजती हुई उसकी

उज्ज्वल तरंगे मुझे ग्रस्त करने के निमित्त अत्यन्त तीव्र वेग से बढ़ी आ रही थीं। देखते-देखते वे मेरे ऊपर आ गिरीं और पता नहीं, मुझे कहाँ एकदम डुबो दिया। हाँफता तथा डुबकियाँ लगाता हुआ अचेत होकर मैं गिर पड़ा।'' इस प्रकार प्रथम दर्शन के समय चेतन ज्योतिः समुद्र के दर्शनलाभ की बात उन्होंने हमसे कही थी। किन्तु चैतन्यघन वराभयकरा जगदम्बा की मूर्ति – उस ज्योतिः समुद्र के अन्दर मूर्ति का दर्शन भी क्या उनको उस समय प्राप्त हुआ था? हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अवश्य प्राप्त हुआ होगा। क्योंकि हमने सुना है कि प्रथम दर्शन के समय जब उन्हें सामान्य चेतना हुई थी, तभी कातर कण्ठ से उन्होंने 'माँ, माँ, शब्द का उच्चारण किया था।''[३]

इन सभी उद्धरणों को देने का मेरा उद्देश्य यह था कि हम काली के केवल बाह्य रूप तक सीमित न हों, इससे आगे बढ़कर उनके दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप का अपने हृदय में अनुभव करने का प्रयास करें, तब हृदय की त्रिताप ज्वाला शान्त होगी और परम आनन्द की अनुभूति होगी। जब हम दिवाली मनाते हैं, दीप जलाते हैं और पटाखे फोड़ते हैं, तो दीप की ज्योति, उसका प्रकाश, पटाखों का रंग-बिरंगा प्रकाश, आदि हमारे मन को आकर्षित करता है और हमें प्रसन्नता होती है। ऐसे ही हम ज्योतिर्मयी काली माँ को अपने हृदय में विराजमान करें और आनन्द का बोध करें। माँ काली की दिव्य ज्योति से सम्पूर्ण जन-मन प्रकाशित हो, सबका हृदय आलोकित हो ! यही माँ से प्रार्थना है !

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, पृ ३२३, (१०/१०/१८८३) **२.** वही, **३.** श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, खण्ड १, पृ.१५८-५९

काली पूजा विशेष

काली का स्वरूप और रूप

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

परम पुरुष परमात्मा ही जगत की कार्यसिद्धि हेतु कभी पुरुष रूप में, तो कभी स्त्री रूप में प्रकट होते हैं। कार्यानुसार ही उपासक की कार्यसिद्धि के लिए वे नर-नारी रूप धारण करते हैं। शास्त्रों का वचन है – **उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।** शिव व शक्ति के रूप में उसी परम पुरुष का प्रकाश युगों-युगों से प्रकाशित है। वही शिव व शक्ति समयानुरूप सौम्य व रौद्र रूप में प्रकाशमान होते हैं। जिस प्रकार सौम्य स्वरूप में शिव महादेव हैं और रौद्ररूप में वही महाकाल, ठीक उसी प्रकार शक्ति भी सौम्य स्वरूप में दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि हैं और रौद्ररूप में वही पराशक्ति महाकाली हैं। शक् धातु में क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से शक्ति शब्द का निरूपण होता है। 'शक् शक्तौ' – शक् धातु का अर्थ है करने की सामर्थ्य। इसीलिए शक् धातु का अर्थ सामर्थ्यवाची है। किसी भी कार्य को करने में अथवा उसके होने में मूल है – इच्छा। इसलिए शक्ति इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपिणी है।

असुरविनाशिनी दुर्गा, सम्पद्दायिनी लक्ष्मी, विद्या व ज्ञानदायिनी सरस्वती जैसी अन्यान्य नाना शक्तिरूपिणी देवियों के विषय में किसी प्रकार की शंका होने का कोई विशेष कारण नहीं है, अपितु रौद्र व उग्र महाकाली के स्वरूप को देखने पर विभिन्न प्रकार के प्रश्न उठना स्वाभाविक है। उग्र, भयंकरी, तामसी मूर्ति में परमा शक्ति की उपासना विस्मय की सृष्टि करती है। इस संशय का कारण भगवती के इस स्वरूप का तात्पर्य नहीं जानने के कारण ही होता है। इसलिये हम यहाँ शास्त्रीय दृष्टि से माँ काली के स्वरूप का तात्पर्य और उनकी महिमा के विषय में चर्चा करेंगे।

महानिर्वाण तंत्र (४/३१-३२) में कहा गया है –

कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।
महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा।।
काल संग्रसनात् काली सर्वेषामादिरूपिणी।।

अर्थात् सर्वभूतों को जो ग्रास करते हैं, वे महाकाल हैं और जो महाकाल को भी ग्रास करती हैं, वह आद्याकाली हैं। काल को भी ग्रास करने के कारण ही पराशक्ति काली हैं। देवीभागवत महापुराण (३/२६/५७ गीता प्रेस) में कहा गया है –

काली कालयते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
कल्पान्तसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम्।।

'कलनात् सर्वभूतानां' – कलन शब्द गति, क्षेप, ज्ञान, गणक, भोगीकरण शब्द एवं स्वात्मलयीकरण अर्थ श्रीभूतिराज जैसे प्रमुख आचार्यगण करते हैं, ऐसा तंत्रसार में अभिनव गुप्त का वचन है।

वस्तुतः काल सृष्टि भी करते हैं और संहार भी। समय के साथ काल और ध्वंसकारी देवता रूद्र एक हो गये हैं। पुराणों व तन्त्रों में वही शिव महाकाल के रूप में वर्णित हैं। इन्हीं महाकाल की शक्ति महाकाली हैं। शक्ति और शक्तिमान अभिन्न हैं। महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है, महाकाल महाकाली का ही रूप है। सर्वसाधारण के लिए उपयोगी पुराणों में काली रूप के आविर्भाव की कथा वर्णित है। नारदपंचरात्र में कहा गया है कि महाराज दक्ष की कन्या सती दक्ष के प्रति कुपित हो देह-त्याग करती हैं एवं मेनका के प्रति अनुग्रह कर काली रूप में उनके गर्भ से जन्म लेती हैं।

मार्कण्डेय पुराण में भगवती के आविर्भाव के सम्बन्ध में शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दैत्य द्वारा उत्पीड़ित देवतागणों द्वारा हिमालय पर महादेवी की स्तुति कर उनका आह्वान करने का प्रसंग आता है। महादेवी के कोषों से देवी कौशिकी का आविर्भाव होता है। देवी कौशिकी निर्गता हो – **'कृष्णाभूत्सापि पार्वती। कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।।''**

दुर्गा सप्तशती में चामुण्डा को भी काली ही कहा गया

है। शुम्भ के आदेश पर चण्ड-मुण्ड को देवी को पकड़ने के लिए अग्रसर होते देख क्रोधवशत: देवी का दिव्य भव्य मुखमण्डल क्रोध से स्याही-सा काला बन गया। तत्क्षण उनके उन्नत ललाट से मसिवर्ण देवी का प्रादुर्भाव हुआ –

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी।।

श्रीमद्भागवतपुराण और चामुण्डा तन्त्र में देवी के विविध स्वरूपों में विशेषरूप से उनके दश स्वरूप; जो दश महाविद्या के नाम से विख्यात हैं, की कथा मिलती है। प्राणतोषिणी तंत्र में इन महाविद्याओं के नाम इस प्रकार बताये गये हैं –

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्तिका च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दशमहाविद्या: सिद्धविद्या: प्रकीर्तिता:।।

श्रीमद्महाभागवत के अष्टम अध्याय में दक्षयज्ञ का विस्तृत वर्णन है। दक्ष ने अपने यज्ञ में शिव का अपमान कर उन्हें निमन्त्रण नहीं भेजा। शिव-विहीन यज्ञ आरम्भ हुआ। नाते में शिव दक्ष के जामाता हैं और देवी सती के पति हैं। अनिमन्त्रित सती यज्ञ में जाने के लिए अधीर होती हैं। शिव उन्हें वहाँ जाने से निषेद्ध करते हैं। किन्तु सती किसी भी तरह से मानना नहीं चाहतीं, तब शिवजी कहते हैं – ''मैं जानता हूँ कि तुम बात मानने के लिए बाध्य नहीं हो, तो तुम्हारी जो इच्छा हो, वही करो।'' ऐसा सुनकर कुपित सती ने भगवान शंकर को अपना प्रभाव दिखाने की दृष्टि से भयंकरी काली मूर्ति रूप धारण किया, जिसे देखकर शिव घबरा गये। वे विध्वंस से भयभीत होकर चारों दिशाओं में आश्रय ग्रहण करना चाहते थे। उसी क्षण भगवती जगदम्बा के द्वारा दशों दिशाओं में महाविद्याओं का प्राकट्य हुआ। पथ खोकर व इन दिव्य शक्तियों से डरकर उन्होंने चक्षुओं को बन्द कर लिया। जब पुन: नेत्र खोले, तो उसी भयंकर करालवदनी कालिका को देखा। उन्होंने पूछा – सती कहाँ हैं? देवी ने कहा, मैं ही सती हूँ –

अहं तु प्रभृति: सूक्ष्मा सृष्टिसंहारकारिणी।
अभवं त्वद्वनितायै त्वदर्थे गौरदेहिका।।

ये सभी मूर्तियाँ मेरी ही रूप हैं। अतएव भय की कोई बात नहीं शम्भु !'' शून्य का कोई मूल्य नहीं है, किन्तु शून्य जब इनके साथ युक्त होता है, तो असीम शक्ति प्रकाश करता है। शून्य निराकार है, ब्रह्ममयी भी निराकार हैं। वही ब्रह्ममयी जब अपनी त्रिगुणात्मिका प्रकृति के साथ युक्त होती हैं, तब 'उपासकानां कार्यसिद्ध्यर्थं' नाना रूप धारण करती हैं। दशमहाविद्या के आविर्भाव-तत्त्व की व्याख्या में कहा जा सकता है कि आद्याशक्ति परब्रह्ममयी का ही विविध प्रकाशमात्र है। महानिर्वाण तन्त्र (१३/४) के अनुसार ''**गुणक्रियानुसारेण देव्या: रूपं प्रकल्पितम्**'' – गुण, क्रियानुसार देवी के रूप प्रकल्पित हैं। इन महाविद्याओं के मध्य काली शुद्ध महत्त्वगुणप्रधाना निर्विकारा निर्गुण परब्रह्मस्वरूप प्रकाशिका शक्ति हैं। योगिनीतन्त्र में वर्णन आता है कि देवी ने घोर नामक असुर को कहा था –

इदानीं पश्य मद्रूपं ब्रह्मानन्दं परं पदम्।
तद्रूपं परमं धाम कालीरूपमिति शृणु।
इत: परतरं रूपं ब्रह्मणो नास्ति कुत्रचित्।।

इन्हीं काली को कैवल्यपददायिनी कहकर कामधेनु तन्त्र में कहा गया है – ''**शून्यमगर्भस्थिता काली कैवल्यपददायिनी**।'' साधक कवि रामप्रसाद ने कहा है – 'काली ब्रह्म जेने मर्म धर्माधर्म सब छेड़ेछि, अर्थात् काली रूपी ब्रह्म के वास्तविक मर्म को जानने के पश्चात् मैंने धर्म-अधर्म सबका परित्याग कर दिया है। मातृसाधक भगवान श्रीरामकृष्ण ने कहा है – ''जो श्यामा हैं, वही ब्रह्म हैं। जिसका रूप है, वही अरूप है। वही सगुण हैं, वहीं निर्गुण। ब्रह्मशक्ति और शक्तिब्रह्म अभेद है। सच्चिदानन्दमय और सच्चिदानन्दमयी।''

वस्तुत: शास्त्र की ऐसी व्याख्या है, किन्तु उनकी जिस मूर्ति की साधक कल्पना करते हैं, पूजा व साधना के लिए उसका तात्पर्य हमलोगों के लिए चिन्तनीय है। श्यामारहस्य में कहा गया है –

कालिका जगतां माता शोकदु:खविनाशिनी।
विशेषत: कलियुगे महापातकहारिणी।

तारारहस्य का कथन है –

कलौ जागर्ति काली च कलौ जागर्ति पन्नगी।
कलौ काली कलौ कृष्ण: कलौ गोपालकालिका।

कालीतन्त्र में विस्तृत रूप से – ''**करालवदनां घोरां मुक्तकेशी चुतर्भुजाम् ...**'' इत्यादि ध्यान मन्त्र का उल्लेख है। प्राय: इसी रूप में देवी की पूजा होती है। कहीं-कहीं प्रतीक उपासना करने पर भी इसी ध्यान मन्त्र का प्रयोग होता है। इसलिये यही विवरण काली के रूप का द्योतक है। यही

आपादमस्तक देवी का स्वरूप साधकों के लिए ध्यातव्य है। उपनिषद ब्रह्मस्वरूप के विषय में – **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।।''** अर्थात् सृष्टि-स्थिति-प्रलय जहाँ से होता है, वही ब्रह्म है। काली के रूप में ब्रह्म के ये तीनों भाव एकत्र रूप में सन्निविष्ट हैं। इसीलिए काली परब्रह्मस्वरूपिणी हैं।

शक्तिसाधना का अभिप्राय काली-साधना से ही है। यद्यपि बंगाल तंत्र-प्रधान क्षेत्र है, जिसके कारण वहाँ शक्ति साधना की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। तथापि केरल, कश्मीर जैसे क्षेत्रों में भी इसकी प्रबलता देखने को मिलती है। शक्तिसंगमतन्त्र में कादि-मतानुसार महाशक्ति को केरल में काली, कश्मीर में त्रिपुरा व गौड़देश में तारा कहा गया है। किन्तु कादि मतानुसार –

अथ कादौ केरले तु त्रिपुरा सा प्रकीर्तिता।
काश्मीरे तारिणी बाला गौड़े काली प्रकीर्तिता।

तन्त्र साहित्यों में माँ काली के दक्षिणाकाली, भद्रकाली, सिद्धकाली, गुह्यकाली, श्मशानकाली, स्पर्शमणी काली आदि विविध नाम मिलते हैं। प्रचलित काली पूजा काली तन्त्रोक्त दक्षिणा काली के ध्यान से ही होता है। हम इसी के अनुसार व्याख्या करेंगे।

दक्षिणा काली नाम क्यों पड़ा?

प्रथम प्रश्न यह उठता है कि दक्षिणाकाली नाम क्यों है? इनका दक्षिण चरण शिव के हृदय पर आगे की ओर संस्थापित होने के कारण इन्हें दक्षिणाकाली कहते हैं, ऐसा प्रचलित है। किन्तु शास्त्रों में इसके अनेक अर्थ मिलते हैं। निर्वाण तन्त्र का कथन है कि रविसुत यम का वास दक्षिण दिशा में है। काली नाम से भयभीत होकर काल अर्थात् यम भागते हैं। इसीलिये उन्हें दक्षिणाकाली कहा जाता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि –

पुरुषो दक्षिणः प्रोक्तो वामा शक्तिर्निगद्यते।
वामा या दक्षिणं जित्वा महामोक्षप्रदायिनी।
अथ सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते।।

अर्थात् पुरुष या शिव को दक्षिण कहा गया है और शक्ति को वामा। वामा दक्षिण को जय करके महामोक्ष प्रदायिनी हैं। इसलिये त्रिजगत में वे दक्षिणा नाम से परिचित हुईं। कर्पूरादि स्तोत्र की व्याख्या में विमलानन्द स्वामी देवी के स्वरूप के वर्णन में कहते हैं – **दक्षिणे दक्षिणामूर्ति भैरवाराधिते इत्यर्थः।**

काली सदा कृष्णवर्णा हैं। श्वेत, पीतादि वर्ण जिस प्रकार कृष्ण वर्ण में विलीन हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार सर्वभूत माँ काली में प्रवेश कर जाते हैं। इस विषय में महानिर्वाण तंत्र का मत है कि साकार-पराशक्ति अरूपा हैं, इसलिए वर्णहीन हैं। जहाँ सभी वर्णों का अभाव होता है, वही घना कृष्णवर्ण है। जिस ज्योति को हमारे नेत्र ग्रहण नहीं कर सकते, वह महाज्योति काली ही हैं। इसीलिए वे कृष्णवर्णा हैं। कर्पूरादि स्तोत्र की टीका में स्वामी विमलानन्द जी ने लिखा है – **''शिवयोर्व्योमरूपत्वात् अमितं लक्ष्यते वपुः।''** आदिकाल में सब कुछ अन्धकार से आच्छन्न था – **'तम् आसीत्तमसा गूढमग्रे।''** – नासदीय सूक्त)

श्रीरामकृष्ण कहते हैं – 'दूर हैं, इसीलिए श्यामा हैं, निकट आने पर कोई रंग ही नहीं है। सरोवर का जल दूर से काला दृष्टिगोचर होता है, किन्तु पास जाकर हाथ में लेने से ज्ञात होता है कि कोई रंग ही नहीं है। आकाश भी दूर से ही नीला प्रतीत होता है, समीप जाने पर ज्ञात होता है कि वर्णशून्य है। ठीक उसी प्रकार हम ईश्वर के जितने समीप जाते हैं, उतनी ही प्रबल धारणा होती है कि उनका नाम-रूप नहीं है। उन्हें छोड़कर कुछ दूर आने पर पुनः 'मेरी श्यामा माँ', जैसे घासफूल (एक प्रकार का श्यामवर्ण पुष्प) का रंग है।'

माँ दिगम्बरी हैं। वस्त्र अर्थात् आवरण। सबसे सूक्ष्म आवरण है माया। माँ काली मायातीता हैं, क्योंकि वे पूर्णब्रह्ममयी हैं। इसलिये आवरणशून्य दिगम्बरी हैं।

माँ काली मुक्तकेशी हैं। केश अर्थात् क्+अ+ईश। क हैं ब्रह्मा, अ हैं विष्णु और ईश हैं शिव। केवलमात्र काली ही त्रिदेवों – ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी मुक्त करती हैं, इसलिए मुक्तकेशी हैं।

माँ त्रिनयना हैं। अपने त्रिनेत्रों के द्वारा माँ जीव के भूत, भविष्य व वर्तमान का दर्शन करती हैं। महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है –

शशिसूर्याग्निभिर्नित्यैरखिलं कालिकां जगत्।
सम्पश्यति यतस्तस्मात् कल्पितं नयनत्रयम्।।

महाकाल के रूप में वे ही समस्त विश्व का ग्रास करती हैं और पुनः महाकाल का भी ग्रास करने के कारण ही वे

करालवनदना हैं। शुभ्रदन्त पंक्तियों द्वारा रक्तवर्ण की लोल जिह्वा को दबाये हुए और उसके नीचे उनके शरीर का भयावह कालावर्ण दृष्टिगोचर होता है। इसका गूढ़ तात्पर्य है कि रक्तवर्ण की जिह्वा रजोगुण का प्रतीक है। रक्त द्वारा काले शरीर अर्थात् तमोगुण को वशीभूत की हुई हैं। अन्ततः शुभ्रदन्त पंक्ति अर्थात् श्वेतवर्ण सत्त्वगुण द्वारा रजोगुण को नियन्त्रित की हुई हैं। भगवती वस्तुतः त्रिगुणों से परे सर्वगुणातीता महाकाली हैं।

देवी के कण्ठ में मुण्डमाला शोभायमान है, जिनमें पचास मुण्ड हैं। ये मातृवर्णों के प्रतीक हैं। मातृकावर्ण नामरूपात्मक अर्थात् शब्दार्थमय जगत का प्रतीक है। महाप्रलय के काल में काली अपने अन्दर इसका संहार करती हैं और पुनः सृष्टिकाल में अपने अन्दर से ही बाहर निकालकर इस जीव-जगत की सृष्टि करती हैं। मुण्डमाला की पौराणिक व्याख्या है कि देवी ने दुष्ट असुरों का वध कर उनके मुण्डों की माला बनाकर धारण किया है।

जगत-पालनार्थ माँ पीनोन्नतपयोधरा हैं। देवी शून्यरूप से अन्नरूप अन्नपूर्णा होकर जगत का परिपालन करती हैं। देवी ने चार हाथों में खड्ग, मुण्ड, वर और अभय मुद्रा धारण किया है। ज्ञान खड्ग द्वारा देवी निष्काम साधकों का मोहपाश छिन्न करती हैं। मस्तक तत्त्वज्ञान का आधार है। तत्त्वज्ञानी साधक द्वारा निवेदित जीवन देवी को अत्यन्त प्रिय है, तभी तो उन्होंने उसके मस्तक को अपने हाथों में रखा है। वे वर और अभय मुद्रा द्वारा जीव को वरदान तथा अभय प्रदान कर रहीं हैं।

माँ काली के कटिदेश में शवहस्तों की कमरधनी है। जीव की कर्मेन्द्रिय है उसका हस्त। कैवल्यदायिनी कालिका जीवों के सकल कर्मपाशों को छिन्न करके उसका मुक्ति-मार्ग प्रशस्त करती हैं। '**शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम्**' – शव निर्गुण ब्रह्म का प्रतीक है। निर्गुण ब्रह्म ही त्रिगुणात्मिका शक्ति का आधार है। उसी आधार के ऊपर लीलावैचित्र्य-स्वरूपिणी सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी महाशक्ति खड़ी हैं। सांख्यशास्त्र में कहा गया है कि जड़-प्रकृति चेतन-पुरुष के सान्निध्य में सक्रिय होती है।

कालीमूर्ति में कुछ विरुद्ध भावों का भी समावेश है। जैसे एक ओर प्रसन्नवदना हैं और दूसरी ओर भयंकरी हैं। वास्तव में हम परमात्मा के सौम्य व प्रसन्न रूप या बाल-गोपाल रूप को पसन्द करते हैं,किन्तु उनके भयंकर स्वरूप को भी जानना चाहिये। माँ काली उसी भयंकर स्वरूप की प्रतीक हैं। भयंकरी होने पर भी माँ साधकों के समक्ष कल्याणरूपिणी और मोक्षदायिनी हैं। जीवों के कर्म-बन्धन को काटने के लिए माँ काली मातृरूप में अवस्थित हैं। स्वामी विवेकानन्द ने एक कविता के द्वारा उनकी स्तुति की है –

कराली तुम्हारा नाम,
मृत्यु है तुम्हारे निःश्वास व प्रश्वास में।
तुम्हारे भीमकाय चरण,
प्रति पद उठते हैं ब्रह्माण्ड के विनाश में।
काली तू प्रलयरूपिणी है,
आओ माँ आओ माँ मेरे पास में।
साहसी जो दुख-दैन्य चाहता,
मृत्यु को जो बाँधे बाहुपाश में।
काल के नृत्य का करता जो उपभोग,
माँ आती हैं उसी के पास में।

○○○

कविता

एक दीप जला दो

आनन्द तिवारी 'पौराणिक'

उठो ! चलो, पुरुषार्थ जगा दो ।
अंधकार को कोसो मत, एक दीप जला दो।।
बैठे ठाले रहने से, अब कुछ न होगा ।
हिम्मत हार, रोने-धोने से क्या होगा ।।
सागर की गर्जन सुनकर, कायर डर जाता ।
गहरे जल में गोते ले, वीर मोती ले आता ।।
मन में आशाए भरकर, विश्वास ला दो ।
अंधकार को कोसो मत, एक दीप जला दो ।।
समय-चक्र नित आगे बढ़ता ।
हर पल नव इतिहास है गढ़ता ।।
मन में ज्ञान ज्योति फैलाकर, जग आलोकित कर दो।
ज़गती के आँचल में, हर्ष-पुष्प महका दो ।।
पीछे काफिला आ जायेगा, एक टेर लगा दो ।
अंधकार को कोसो मत, एक दीप जला दो ।।

रामराज्य का स्वरूप (१०/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान श्रीरामभद्र की महती अनुकम्पा से यह भगवत्-चरित्र का प्रवचन क्रम जो दस दिनों से चल रहा है, आज समापन की दिशा में बढ़ रहा है। मैं अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली अनुभव करता हूँ कि विगत चौबीस या पच्चीस वर्षों से इस पवित्र प्रांगण में भगवान के गुणानुवाद के लिये श्रद्धेय स्वामीजी आमन्त्रित करते रहे हैं और यह प्रभु की अनुकम्पा ही है कि यह अनवरत क्रम चलता जा रहा है। श्रद्धेय स्वामीजी महाराज के स्नेहबन्धन में मैं स्वयं को बहुत बँधा हुआ पाता हूँ। यद्यपि व्यस्तता के बीच में बार-बार यह आग्रह किया जाता है कि प्रतिवर्ष के कार्यक्रमों में कुछ परिवर्तन किया जाना चाहिए, जिससे अन्य स्थानों में भी लोगों को सुनने का अवसर मिल सके। लेकिन उनका प्रेम और आप लोगों का प्रेम मुझे इतना आकृष्ट करता है कि इस क्रम परिवर्तन में मैं रायपुर को हटाने की कल्पना नहीं कर पाता। श्रद्धेय स्वामीजी ने अगले वर्ष के लिए न केवल आमन्त्रण दिया है, अपितु मुझे यह भी आदेश दिया है कि मैं स्वीकृति की घोषणा भी कर दूँ। अब उनके आदेश पालन के लिए मैं यह कहूँगा कि प्रभु की अनुकम्पा होगी, तो अगले वर्ष भी हम सब यहाँ पर एकत्र होंगे।

इस वर्ष विवेकानन्द जयन्ती के पावन प्रसंग में प्रवचन के पहले एक अतिरिक्त लाभ आप लोगों और हमलोगों को होते रहा है। श्रद्धेय स्वामीजी न केवल पिछले दिन की कथा का सार संक्षेप आपके सामने रख देते थे, अपितु पूरक प्रसंग के रूप में भगवान श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द से सम्बन्धित ऐसे संस्मरण प्रस्तुत करते थे, जिससे त्रेतायुग का सत्य वर्तमान युग से कैसा जुड़ा हुआ है, यह प्रत्येक व्यक्ति हृदयंगम कर लेता था। इस अतिरिक्त लाभ के लिए मैं स्वामीजी महाराज के प्रति आभार प्रगट करता हूँ।

पच्चीस वर्ष पहले प्रेमचन्द्रजी के आमंत्रण से यह प्रवचन-शृंखला प्रारम्भ हुई थी। प्रेमचन्द्रजी के स्नेह के लिये मैं प्रतिवर्ष उनका स्मरण करता हूँ। इस वर्ष भी मैं उनका और हमारे प्रति स्नेहयुक्त सेवा-भावना का जो भार श्री राजेन्द्र तिवारी जी और पवनकुमारजी ने उठाया, उसके लिए मैं उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। सभी समाचार पत्रों में, नवभारत, दैनिक भास्कर, देशबन्धु, अमृत संदेश, एम.पी. क्रानिकल इन सभी समाचार पत्रों में रामराज्य की कथा का सार संक्षेप प्रस्तुत किया गया। यह सार संक्षेप का कठिन कार्य श्रीओम प्रकाश जी के द्वारा हुआ। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि ये सब समाचार पत्र भले ही अलग-अलग विचारधाराओं से जुड़े हुए हों, पर रामराज्य से सम्बन्धित संवाद को सभी ने प्रसारित किया। इसका अर्थ है कि रामराज्य के सन्दर्भ में कोई विवाद नहीं है। वह सर्वसम्मत सूत्र है। यह प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक व्यक्ति के लिए कल्याणकारी है। मैं श्रद्धेय स्वामीजी के प्रति, आप लोगों के स्नेह के प्रति, आश्रम के सभी महानुभावों के प्रति, जिनका स्नेह मुझे निरन्तर प्राप्त होता है, कृतज्ञ हूँ। आइए, जो प्रसंग पिछले दिनों से प्रारम्भ किया गया था, संक्षेप में उस पर दृष्टि डालने की चेष्टा करें।

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।
७/२१/०

रामराज्य के सन्दर्भ में बारह दोहों में गोस्वामीजी ने उसके स्वरूप का वर्णन किया है। मैं तो उसमें से केवल एक दोहा प्रतिदिन आपके समक्ष दोहरा देता हूँ, जिस दोहे में यह कहा गया कि यद्यपि सृष्टि के साथ काल, कर्म, स्वभाव और गुण की समस्या जुड़ी हुई है और काल, कर्म,

स्वभाव और गुण के कारण ही व्यक्ति कभी सुखी होता है, तो कभी दुखी होता है। किन्तु रामराज्य की यह विशेषता थी कि वह काल, कर्म, स्वभाव और गुण से मुक्त था। ऐसे समाज की कल्पना जिसमें इस प्रकार के दुख किसी व्यक्ति के जीवन में न हो, यह तो प्रत्येक युग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए अभीष्ट है। पर इस रामराज्य की क्या भूमिका है, इस रामराज्य की स्थापना कैसे होती है, इसका विस्तृत वर्णन रामचरितमानस में किया गया है।

वस्तुत: रामराज्य की स्थापना के सन्दर्भ में कल जो चर्चा आपके समक्ष चल रही थी कि समस्याओं का वास्तविक उद्‌गम व्यक्ति के अन्त:करण में है। जब तक बहिरंग दृष्टि से आदर्श राज्य की स्थापना की चेष्टा की जायेगी, प्रयत्न किया जायेगा, तब भले ही बहिरंग रूप में ऐसा प्रतीत हो कि यह एक आदर्श राष्ट्र है, लेकिन सच्चे अर्थों में उस राष्ट्र में समग्रता नहीं आ सकती। क्योंकि रामचरितमानस की दृष्टि में समग्रता का आदर्श केवल व्यवस्था नहीं है, अपितु व्यक्ति के अन्तर्मन में, जीवन में परिवर्तन है। श्रीभरत ने अयोध्या में एक बात कही थी कि आप लोग मुझे राजा के सिंहासन पर बैठाकर मुझसे यदि यह आशा रखते हैं कि मैं आप लोगों की समस्याओं का समाधान कर दूँगा या आपकी पीड़ा को दूर कर दूँगा, तो आपकी यह धारणा सही नहीं है। श्रीभरत ने एक सूत्र कहा और वह सूत्र बड़े महत्त्व का है। उन्होंने कहा कि स्वयं जिस व्यक्ति के हृदय में दुख की ज्वाला जल रही हो, जो स्वयं पीड़ित और संतप्त हो, वह व्यक्ति अगर दूसरों को बाँटेगा, तो जो उसके पास होगा, वही तो देगा। यह स्वाभाविक है, हम दूसरों को वही दे सकते हैं, जो हमारे पास है। जो दूसरों को सुख और शान्ति देने की चेष्टा कर रहे हैं, उनके स्वयं के जीवन में न सच्चा सुख और न सच्ची शान्ति का अनुभव हो रहा है, उनसे यह कैसे आशा की जाये कि वे दूसरे व्यक्तियों को सुख और शान्ति की दिशा में ले जाने में सक्षम होंगे, समर्थ होंगे? इसलिए श्रीभरत के चरित्र में एक बड़ा सुन्दर सूत्र है। उन्होंने अयोध्या के राज्य को चलाने का प्रस्ताव प्रारम्भ में भले ही स्वीकार न किया हो, लेकिन जब वे चित्रकूट से लौटकर आए और चौदह वर्ष तक उन्होंने अयोध्या का राज्य चलाया, तो इसका अभिप्राय यही तो हुआ कि वे कर्तव्य कर्म से नहीं भाग रहे थे। पर उन्होंने बड़े महत्त्व का एक सूत्र दिया कि पहले हम चित्रकूट चलेंगे। चित्रकूट चलने का उद्देश्य क्या होगा? तो उन्होंने अपनी मन:स्थिति का वर्णन करते हुए कहा –

आपनि दारुन दीनता कहऊँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।।
२/१८२/०

आप लोग मुझे एक राजकुमार के रूप में देख रहे हैं, पर मेरी दरिद्रता कितनी बड़ी है, दीनता कितनी बड़ी है, शायद आप लोग इससे परिचित नहीं हैं। मेरे हृदय में दुख की कितनी दावाग्नि जल रही है, इसका भी आपको ज्ञान नहीं है। इसलिए पहले आप मुझे आदेश दीजिए, पहले मैं अपने हृदय की दीनता को तो दूर कर सकूँ। जब मैं अपने हृदय की दीनता दूर कर पाऊँगा, तभी तो दूसरों की दीनता को दूर करने में सक्षम हो सकता हूँ। जब मेरे हृदय की ज्वाला शान्त होगी, तभी तो दूसरे के हृदय में जलते हुए ज्वाला का शमन करने में, उसे बुझाने में समर्थ हो पाऊँगा। इसीलिए श्रीभरत ने यह आग्रह किया कि मैं चित्रकूट चलूँगा। चित्रकूट जाने का क्या उद्देश्य था, इसकी घोषणा उन्होंने नहीं की, पर यह हम पढ़ते हैं कि चित्रकूट से लौटकर भरतजी ने राज्य का ऐसा अद्‌भुत संचालन किया, जो सच्चे अर्थों में राम-राज्य था। उसे हम यों कह सकते हैं कि औपचारिक रूप में तो अयोध्या में रामराज्य की स्थापना तब हुई, जब भगवान श्रीराम लंका से लौटकर अयोध्या आकर अयोध्या के राज सिंहासन पर बैठे। पर अगर आन्तरिक दृष्टि से विचार करके देखें, तो भगवान श्रीराम के आगमन के पहले ही श्रीभरत के द्वारा रामराज्य की स्थापना अयोध्या में की जा चुकी थी। बड़ा ही भावात्मक चित्र गोस्वामीजी ने प्रस्तुत किया है ! जिस दिन भगवान श्रीराघवेन्द्र के राज्याभिषेक का मुहूर्त, घड़ी निश्चित की गयी, उस दिन गुरुवशिष्ठ ने सेवकों को आदेश दिया कि पहले वे श्रीराम को स्नान करावें, श्रीराम का शृंगार कर और उसके पश्चात् श्रीराम अयोध्या के सिंहासन पर विराजमान हों। सेवकों की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं। सेवक बड़े उत्साह से भगवान राम को स्नान कराने के लिए उनकी ओर चले। भगवान श्रीराघवेन्द्र ने गुरुदेव के आदेश में संशोधन किया, परिवर्तन किया। जो सेवक स्नान कराने आए थे, उनको आदेश दिया –

राम कहा सेवकन्ह बुलाई।
प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई।। ७/१०/२

पहले मेरे मित्र बन्दरों को स्नान कराओ। भगवान श्रीराम का संकेत क्या था? उनका अभिप्राय क्या था? स्नान के द्वारा व्यक्ति के श्रम का निराकरण होता है। थकान मिटती है और शीतलता की अनुभूति होती है। भगवान श्रीराघवेन्द्र

का तात्पर्य यह था कि सच्चे अर्थों में रामराज्य की स्थापना में अगर किसी ने श्रम किया है, तो वे मेरे सखा हैं। जो महानतम सफलता प्राप्त करके लंका से लौटकर आया हूँ, उस कार्य में भले ही आप लोगों को या गुरुदेव को प्रतीत हो रहा हो कि राम ने लंका पर विजय पाने में महान कार्य किया, महान श्रम किया, पर सच्चे अर्थों में यह जो विजय प्राप्त हुई है, यह मेरे मित्रों की विजय है, यह बन्दरों की विजय है। इसलिए मुझे पहले स्नान कराने की आवश्यकता नहीं है, पहले मेरे मित्रों को स्नान कराया जाना चाहिए। सेवक आदेश पालन करने के लिये बाध्य थे। सेवक जब बन्दरों को स्नान कराने के लिए गये, तो यहाँ पर सांकेतिक सूत्र है। वस्तुत: रामराज्य का श्रीगणेश ऊपर से होगा कि नीचे से होगा? प्राय: होता यह है कि जितने राज्य होते हैं, उसमें व्यवस्था पहले ऊपर होती है और बाद में उस व्यवस्था का यत्किंचित् लाभ नीचे के लोगों को होता है। आप देखते ही हैं, जो बड़े-बड़े नगरों, महानगरों का जिस तेजी से विकास होता है, ग्रामवासियों या वासियों का वैसा विकास नहीं हो पाता। तो इसका अभिप्राय है कि बड़े-बड़े नगरों की व्यवस्था को देखकर दूसरों के मस्तिष्क पर यह प्रभाव पड़ता है कि राष्ट्र बड़ा उन्नत है या बड़ा शिक्षित है, पर रामराज्य के सन्दर्भ में ऐसा नहीं है। रामराज्य का प्रथम नागरिक कौन है? रामराज्य का श्रीगणेश कैसे हुआ? मुझसे अगर कोई पूछे, तो मैं तो यही कहूँगा कि रामराज्य का प्रथम नागरिक है केवट। यहीं से रामराज्य का श्रीगणेश हुआ।

उसको हम इस पद्धति से कहना चाहेंगे कि भगवान राम ने यह नहीं माना कि उन्हें देश निकाला दे दिया गया। जब वे कौशल्या अम्बा से आज्ञा लेने गये, तो कौशल्या अम्बा को उस समय तक यह समाचार नहीं मिला था कि श्रीराम को वन जाने का आदेश दिया गया है। वे यही समझ रही थीं कि राम अभी स्नान करके जाएँगे और सिंहासन पर उनका अभिषेक होगा। बड़े प्यार से उन्होंने कहा, राम, पहले तुम थोड़ा-सा फल खा लो, क्योंकि पता नहीं राज्याभिषेक की विधि में कितना विलम्ब हो जाये। उसके पश्चात् तुम पिता के पास जाना, जिससे राज्याभिषेक के विलम्ब से तुम्हें भूख से कष्ट न हो।

जो मन भाव मधुर कछु खाहू।।
पितु समीप तब जाएहु भैआ।
भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया।। १/५२/१-२

भगवान राम ने कौशल्या अम्बा से कहा – माँ, मैं तुम्हें एक बड़ी प्रसन्नता का समाचार देने आया हूँ। माँ को पुत्र की उन्नति से प्रसन्नता होती है, तो शायद तुम्हें पता नहीं है कि मेरी उन्नति हो गई है। क्योंकि तुम्हें तो यही सूचना दी गई थी कि मेरा युवराज पद पर अभिषेक किया जायेगा। लेकिन अब मुझे युवराज के स्थान पर सीधे राजा बना दिया गया है। माँ ने आश्चर्य से श्रीराम की ओर देखा। क्या महाराज ने सिंहासन छोड़ देने का निर्णय किया है। क्या वे वन में जाने का निर्णय कर चुके हैं। भगवान राम ने माँ से कहा – नहीं, पिताजी ने मुझे जो राज्य दिया है, वह वन का राज्य दिया है। भगवान ने देश निकाला नहीं कहा। भगवान का वाक्य है –

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू।

लगा कि यह तो बड़ी काव्यपूर्ण भाषा हुई। माँ को भी सुनकर बड़ा विचित्र और अटपटा-सा लगा। क्योंकि भारतवर्ष इतना बड़ा है, पर राजधानी तो किसी वन में नहीं होती है। राजधानी जो होगी, वह तो किसी बड़े भव्य नगर में होगी। इसी प्रकार से अयोध्या का राज्य दूर-दूर तक फैला हुआ था, पर उसकी राजधानी तो अयोध्या ही थी। अयोध्या के राज-सिंहासन पर बैठकर ही राज्य का संचालन किया जाता था। पर भगवान राम ने माँ से यह कहा – माँ, पिताजी ने मुझे जंगल का राज्य दिया है। एक वाक्य कहकर प्रभु ने कहा कि यह मेरी कल्पना नहीं है, यह मेरी दृष्टि में यथार्थ है। भगवान राम ने कहा – माँ, आज तक सूर्यवंश में राज्य संचालन में जो भूल होती रही है, उस भूल का परिमार्जन पिताजी के द्वारा कर दिया गया। क्या? वहाँ पर भी क्रम वही है कि रामराज्य की स्थापना कहाँ से होगी? पहले नगर से होगी कि वन से होगी? बस यहाँ पर भी सूत्र वही है। भगवान राम ने कहा –

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।। २/५२/६

सचमुच जहाँ मेरी सबसे अधिक आवश्यकता है। नगर में रहकर तो मैं एक शोभा की वस्तु बन जाता, एक प्रदर्शन की वस्तु बन जाता। अयोध्या के नागरिक मेरा दर्शन करके प्रसन्नता का अनुभव करते, समृद्धि में पले हुए लोग मुझे देखते, लेकिन पिताजी ने तो मुझे उस जंगल का राज्य दिया है, जहाँ सचमुच मेरी आवश्यकता है। यह रामराज्य के सन्दर्भ में भगवान राम का सामाजिक दृष्टिकोण है। रामराज्य का श्रीगणेश वन से होता है, जहाँ सबसे अधिक आवश्यकता है रामराज्य की। **(क्रमश:)**

क्रोध से शान्ति की ओर

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

किसी शहर में कवश नामक एक व्यक्ति रहता था। वह मध्यम परिवार का सदस्य था। घर में उसकी पत्नी और एक आठ वर्ष का पुत्र था। एक अच्छा सुखी परिवार था, पर तभी उस परिवार में एक घटना घटी। उस व्यक्ति ने ऋण में एक कार खरीदी। वह कार अपने घर लेकर आया। घर के सभी सदस्य बड़े आनन्दित थे। प्रतिदिन सब मिलकर कार की सफाई किया करते और साथ में घूमा करते थे। एक दिन ऐसे ही कार की सफाई करते हुए उस व्यक्ति ने देखा कि उसका बेटा पत्थर से कार की सतह को खरोंच रहा है। यह देखकर उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। क्रोध के आवेश में आकर उसने उस पत्थर को बच्चे के हाथ से छीना और बच्चे की नर्म उँगलियों पर उस पत्थर से आघात करने लगा। बच्चे की नरम उँगलियाँ खून से लथपथ हो गईं। रक्त के प्रवाह को देखकर उसे अपने क्रोध का भान हुआ और तब उसने आघात करना छोड़ दिया। बच्चा चीख-चीखकर रो रहा था। चीख सुनकर उसकी माँ रसोई से दौड़ती हुई बाहर आई। जब माँ ने बच्चे के हाथ को देखा तो वह एक पगली की भाँति रोने लगी। अपने पति से इसका कारण पूछा, पर पति अपने कर्म से इतना लज्जित हो चुका था कि कुछ बोल न सका और बच्चा इतना रो रहा था कि मुख से और कुछ बोल ही नहीं पा रहा था। दोनों ने तुरन्त गाड़ी में बच्चे को बैठाया और अस्पताल पहुँचे। अस्पताल में डॉक्टर ने कहा कि बच्चे की उँगलियाँ बुरी तरह से चकनाचूर हो चुकी हैं, उँगलियों को काटना पड़ेगा और वह सारा जीवन बिना उँगलियों के ही रहेगा। यह सुनकर माता-पिता को गहरा आघात लगा। दोनों बहुत दुखी हुए। बच्चे की चिकित्सा करवाकर जब वे वापस घर को आए, तो उस व्यक्ति की दृष्टि कार के उस जगह पर पड़ी जिस स्थान पर उसके बच्चे ने खरोंचा था। उसके बच्चे ने कार पर लिखा था 'मेरे प्यारे पिताजी' यह देखकर उसका मन ग्लानि से भर गया कि मेरा बच्चा मुझे कितना प्रेम करता है और मैं उसके लिए शत्रु बन गया। उसे दोबारा बहुत क्रोध आया और उसने इसका कारण उस कार के प्रति अपने मोह को समझा और उसने उस कार में आग लगा दी। जलता हुआ कार देखकर जब उसकी पत्नी बाहर आई, तब उसने पूरा वृत्तान्त अपनी पत्नी को सुना दिया। उसकी पत्नी उसे समझाकर उसके क्रोध को शान्त करने का प्रयास कर रही थी, पर उसका क्रोध शान्त नहीं हो रहा था। वह यह सोच-सोच कर बेचैन हो रहा था कि अब जब भी उसकी दृष्टि उसके बच्चे के हाथों पर पड़ेगी, तो उसे यही घटना स्मरण हो आयेगी और इस प्रकार वह पूरा जीवन कैसे व्यतीत करेगा। इस प्रकार वह सारी रात बेचैन रहा और अन्त में उसने आत्महत्या कर ली। क्रोध के कारण पहले तो उसने बच्चे की उँगलियाँ तोड़ डालीं, फिर एक कीमती कार जला दी, कार के ऋण का भार तो पहले से था ही और एक अपाहिज हो चुके बच्चे का भार अपनी पत्नी के कंधे पर छोड़कर उसने आत्महत्या कर ली। क्रोध का आश्रय लेकर वह व्यक्ति एक के बाद एक अनुचित निर्णय लेता रहा और अपने हँसते-खेलते सुखी परिवार को मरुभूमि में परिवर्तित करके उन्हें वैसा ही दुखी छोड़ गया। क्रोध व्यक्ति को पागल बना देता है। क्रोध के कारण व्यक्ति उचित निर्णय नहीं ले पाता। हम सब भी कभी न कभी क्रोध की चपेट में आ जाते हैं, जो कि हमारे जीवन के लिए घातक है, अत: आइए, इस क्रोध से बचने और शान्ति की ओर जाने के उपायों के विषय में विचार-विमर्श करें –

क्रोध के दुष्परिणाम

अनुचित निर्णय : उपरोक्त घटना से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रोध में व्यक्ति अनुचित निर्णय लेने लगता है। वस्तुत: क्रोध में व्यक्ति आवेगपूर्ण निर्णय लेने लगता है। उस समय उसके मन में द्वेष, ईर्ष्या, प्रतिशोध आदि की भावनाएँ इतनी प्रबल हो उठती हैं कि उस समय उसकी विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। अत: ऐसे समय में लिए हुए निर्णय अधिकांशत: विनाशकारी होते हैं। कभी-कभी क्रोध हमारे जीवन भर की समस्या का कारण बन जाता है।

क्रोध से सम्मान घटना – महाविद्यालय में अध्ययनरत कुछ छात्र अपने एक मित्र के घर जाते हैं। वहाँ उसके पिता किसी बात पर क्रोधित हो जाते हैं। इसके पश्चात् उसकी माँ उत्तर में कुछ कह देती हैं और दोनों के बीच झगड़ा होने लगता है। यह देखकर उस छात्र के मित्र शीघ्रता से उस स्थान से चले जाते हैं तथा फिर कभी उसके घर नहीं जाते। यदि कभी अत्यधिक आवश्यकता पड़ती, तो वे उसके घर के बाहर से ही मिलकर चले जाते थे। सम्भवत: ऐसा झगड़ा उनके घर प्रतिदिन न होता हो, पर उस दिन की घटना ने उसके मित्रों के मानस पटल पर ऐसा चित्र अंकित कर दिया कि उसके मित्रों ने उसके घर जाना ही छोड़ दिया। इस प्रकार उस एक दिन के क्रोध के कारण उसके मित्रों के मन में उसके परिवारवालों के प्रति सम्मान घट गया।

एक विनम्र व्यक्ति और एक क्रोधी व्यक्ति की तुलना की जाए, तो विनम्र व्यक्ति सदैव सम्मान का पात्र बन जाता है। विनम्र व्यक्ति को सम्मान स्वत: ही मिल जाता है, पर वैसा सम्मान क्रोधी व्यक्ति को कभी नहीं मिलता। क्रोधी व्यक्ति अपने क्रोध के कारण अपनी छवि स्वयं धूमिल कर लेता है। क्रोधी को ऐसा लगता है कि उसके साथ रहने वाले या उसके साथ काम करनेवाले उसकी निन्दा करके उसकी छवि धूमिल कर रहे हैं, जबकि उसका क्रोध ही उसकी छवि को धूमिल करने के लिए पर्याप्त होता है।

क्रोध एक पागलपन है – क्रोध एक पागलपन है क्योंकि जिस समय व्यक्ति क्रोधित होता है, उस समय उसे नीति-अनीति, बड़े-छोटे, कर्तव्य-अकर्तव्य आदि किसी का भान नहीं रहता। तब उस समय के तात्कालिक निर्णय स्वयं को आत्मसंतुष्ट करने के लिए होते हैं, जबकि उस समय वह विवेकहीन होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कभी कुछ तोड़ देता है, जला देता है, किसी पर आघात करता है, किसी से अपशब्द कहता है, पर उसके परिणामों के पीछे उसकी बुद्धि कार्य नहीं करती कि ऐसा करने से क्या होगा? इस प्रकार उस समय वह एक पागल जैसा ही होता है।

क्रोधी व्यक्ति लोकप्रिय नहीं होता – जो व्यक्ति बहुत क्रोधी होते हैं, उनसे लोग दूरी बनाकर रखना पसंद करते हैं। किसी कार्यवश भले ही लोग हामीं भरते हों, पर अंदर ही अंदर उस व्यक्ति के लिए लोगों के हृदय में सम्मान नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने पर भी लोकप्रिय नहीं होते, क्योंकि उनके अच्छे गुणों और प्रतिभाओं को उसका क्रोधी स्वभाव धूमिल कर देता है। क्रोधी प्रवृत्ति वाले लोगों से सदैव सभी सावधान ही रहते हैं और इस प्रकार उनकी लोकप्रियता कम हो जाती है। कभी-कभी स्थिति ऐसी होती है कि वे अपने क्रोध के कारण नकारात्मक रूप से प्रसिद्ध हो जाते हैं।

क्रोध के पश्चात् पश्चाताप होना – जब व्यक्ति क्रोधित होता है, तब क्रोध के आवेश में वह कुछ भी कह जाता है, कुछ भी कर जाता है। पर अन्त में उसका परिणाम बुरा होता है और तत्पश्चात् पश्चात्ताप करने के अलावा उसके पास और कुछ नहीं होता। रामायण में ऐसा ही एक प्रसंग आता है। श्रीराम मायावी हिरण के पीछे गए होते हैं, इसी बीच 'लक्ष्मण' शब्द की चीख सुनाई देती है। तब माता सीता लक्ष्मण को श्रीराम की सहायता के लिए जाने को विवश करती हैं। जब लक्ष्मण जाने से मना करते हुए कहते हैं कि भैया पर कोई विपत्ति नहीं आ सकती, तब सीता क्रोधित हो जाती हैं और तब लक्ष्मणजी जाने को बाध्य हो जाते हैं। लक्ष्मणजी के जाने के पश्चात्, घटनाक्रम में माता सीता का अपहरण हो जाता है। तब सीता कहती हैं –

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा।
सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा।।

(श्रीरामचरितमानस ३/२८/२)

यहाँ पश्चाताप करते हुए माता सीता कहती हैं – हे लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया था, उसका ही फल पाया है। वस्तुत: क्रोध के पश्चात् होनेवाले परिणामों तक उसे बदल पाने का समय हमारे हाथों से जा चुका होता है और तब पश्चात्ताप करने के आलावा हमारे हाथ कुछ नहीं होता।

क्रोधियों के मित्र नहीं होते – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसे समाज में रहने के लिए मित्रों की आवश्यकता होती है। मित्रों की सहायता से बहुत-से कार्य सहज ढंग से पूर्ण हो जाते हैं, चाहे वह किसी कार्य को संपादित करने के लिए हो अथवा सुझाव लेने के लिए हो अथवा मन के आनंद के लिए ही क्यों न हो। किसी से मित्रता के लिए किसी के साथ मैत्री भाव, सद्व्यवहार का होना या भावों का मिलना आवश्यक होता है। परन्तु क्रोधी लोगों से लोग सदैव दूर भागते रहते हैं। अत: उनके मित्र

नहीं होते। यदि उनके इर्द-गिर्द कुछ लोग होते भी हैं, तो वे या तो किसी मजबूरी या किसी स्वार्थ के कारण उपस्थित होते हैं। यदि किसी की मित्रता किसी क्रोधी व्यक्ति से हो भी जाए, तो वह अधिक दिनों तक नहीं टिकती।

क्रोध का संस्कार बनना – एक दिन जयरामवाटी में किसी के छोटी मामी के साथ बातचीत में कठोर भाषा का प्रयोग करने पर माँ ने कहा, 'यह क्या जी, मनुष्य के मन को चोट पहुँचाकर क्या बात करनी चाहिए? बात सच होने

पर भी उसे अप्रिय ढंग से नहीं बोलनी चाहिए। नहीं तो स्वभाव बाद में वैसा ही हो जाता है।' (माँ की बातें १७९) वास्तव में कड़े शब्दों का प्रयोग करते-करते हममें वैसे ही संस्कार बनने लगते हैं और हम सामान्य-सी बातों पर भी क्रोधित होने लगते हैं। अत: इससे हमें सावधान रहना चाहिए।

कई बार शिक्षक और अभिभावक बच्चों को नियंत्रित करने के लिए उन पर क्रोध करते हैं, ताकि उस क्रोध के द्वारा बच्चे भयभीत हों और उनके अनुसार चलें। पर कभी-कभी यह क्रोध बड़ों का स्वभाव बनने लगता है। यदि हम अपने क्रोध को संतुलित न रख सकें, तो जिनके हित के लिए हम क्रोध कर रहे होते हैं, वह हमारे क्रोधी स्वभाव के कारण हमसे दूर हो जाएँगे। दंड देने से बच्चे उद्दण्ड हो जाते हैं, अत: क्रोधित होकर हम बच्चों के संस्कार नहीं बदल सकते। यदि हम बच्चों को प्रेमपूर्वक समझाएँ, तो हम भी शान्ति से रह सकते हैं और इससे हममें क्रोध के संस्कार नहीं पनपेंगे।

क्रोध से स्वयं को अधिक हानि – क्रोध से दोनों व्यक्ति को हानि पहुँचती है। जिस पर क्रोध किया जाता है, उसके मन में नकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं, वहीं क्रोध करनेवाले व्यक्ति पर भी इसका शारीरिक और मानसिक दुष्प्रभाव पड़ता है। क्रोध करने से व्यक्ति का मन अशान्त हो जाता है, वह जीवन का मधुर रस नहीं ले पाता और विभिन्न बीमारियों को आमन्त्रित कर लेता है। आज विज्ञान इस बात की पुष्टि करता है कि क्रोध से व्यक्ति का रक्तचाप बढ़ जाता है, तनावग्रस्त होने के कारण क्रोध करनेवाले व्यक्ति को विभिन्न शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ अपना ग्रास बना लेती हैं। इस प्रकार क्रोध से सर्वाधिक हानि क्रोध करनेवाले व्यक्ति को होती है।

क्रोध एक संक्रामक रोग है – एक उच्च अधिकारी का अपनी पत्नी के साथ झगड़ा हो जाता है। वह कार्यालय में प्रवेश करता है और अपना पूरा क्रोध क्लर्क पर उतार देता है। क्लर्क अपने क्रोध को चपरासी पर उतार देता है। चपरासी कार्यालय में किसी पर क्रोध नहीं कर पाता। वह अपना क्रोध घर जाकर अपनी पत्नी पर उतार देता है और पत्नी उस क्रोध को अपने बच्चे की पिटाई करके उतार देती है। वास्तव में जब एक व्यक्ति दूसरे पर क्रोध करता है, तो उसके अन्दर नकारात्मक भाव कार्य करते रहते हैं, अवसर मिलने पर वह उस क्रोध को दूसरे पर प्रयोग करता है। इस प्रकार क्रोध एक संक्रामक रोग है, जिससे एक व्यक्ति का मानसिक तरंग दूसरे के मानसिक तरंग को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

क्रोध से शक्ति-क्षय – क्रोध करने से हमारी ही शारीरिक और मानसिक शक्तियों का क्षय होता है। यदि हम उन शक्तियों को सकारात्मक दिशा में उपयोग कर सकते, तो सम्भवत: इसके सकारात्मक परिणाम भी होते। क्रोध करने के पश्चात् न तो व्यक्ति स्वयं सुखी रह पाता है और न दूसरों को सुख दे पाता है, परन्तु उसकी बहुत-सी शक्तियाँ अवश्य क्षय हो जाती हैं।

एक कारखाने में एक व्यवस्थापक था। वह सदा कर्मचारियों पर क्रोध करता रहता था। यदि कोई कर्मचारी उसके समक्ष कोई समस्या लेकर जाता, तो वह उसका समाधान न करके उन पर क्रोधित होता रहता था। उसे ऐसा लगता था कि ऐसा करने से लोग उससे डरेंगे और अधिक काम करेंगे, जिससे उनकी उत्पादकता बढ़ेगी। परन्तु कर्मचारी उसके व्यवहार से निराश हो जाते थे, जिससे उनकी कार्यक्षमता में कमी आने लगी। समस्याओं का समाधान न होने के कारण उन समस्याओं से जूझते हुए कर्मचारी किसी तरह अपने कार्य

को सम्पादित करते थे, जिससे कारखाने की उत्पादकता कम हो गयी।

क्रोधी अस्पृश्य होता है – भगवान गौतम बुद्ध अपने शिष्यों सहित सभा में विराजमान थे। शिष्यगण उनकी स्थिरता देखकर चिन्तित हुए कि कहीं वे अस्वस्थ तो नहीं हैं। एक चिन्तित शिष्य बोल उठा, 'भगवन, आप आज इस प्रकार मौन क्यों हैं? क्या हमसे कोई अपराध हुआ है? तब भी भगवान बुद्ध मौन ही रहे। तभी बाहर खड़ा कोई व्यक्ति जोर से बोला, 'आज मुझे सभा में बैठने की अनुमति प्रदान क्यों नहीं की गई?' बुद्धदेव नेत्र बन्दकर बैठे ही रहे। तब एक उदार शिष्य ने उसका पक्ष लेते हुए कहा कि उसे सभा में आने की अनुमति प्रदान करें। तब बुद्धदेव बोले, 'नहीं, वह अस्पृश्य है। उसे आज्ञा नहीं दी जा सकती।' शिष्यगण आश्चर्य में डूब गए। एक शिष्य बोल उठा, वह अस्पृश्य कैसे हुआ? आपके धर्म में तो जात-पात का कोई भेद नहीं है। तब बुद्धदेव ने उत्तर दिया, 'आज वह क्रोधित होकर आया है। क्रोध से जीवन की एकता भंग होती है। क्रोधी व्यक्ति मानसिक हिंसा करता है। किसी भी कारण से क्रोध करनेवाला अस्पृश्य होता है। उसे कुछ समय तक पृथक् एकान्त में खड़े रहना चाहिए। पश्चात्ताप की अग्नि में तपकर वह समझ लेगा कि अहिंसा ही महान कर्तव्य है – परम धर्म है।'

अधिकांशत: हम दूसरों में दोष देखते रहते हैं, दूसरों को छोटा समझते हैं। इस घटना से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें वस्तुत: स्वयं को प्रशिक्षित करना पड़ेगा। कोई लेख या कोई भाषण सुनकर किसी का क्रोध शान्त नहीं हो जाता, इसके लिए अपने चरित्र, अपने व्यक्तित्व में उन भावों का सामंजस्य और उपदेशों का क्रियान्वयन अत्यन्त आवश्यक होता है, तभी हम अपने क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, क्रोध से शान्ति की ओर जा सकते हैं।

क्रोध के कारण

संस्कार – छोटी-मोटी बातों पर क्रोध करते रहने के कारण धीरे-धीरे वह हमारे संस्कार में आने लगता है और धीरे-धीरे हम क्रोधी प्रवृत्ति के बन जाते हैं। कभी-कभी इसके विपरीत भी होता है कि हमारे क्रोधी प्रवृत्ति के कारण हम व्यर्थ ही क्रोध करने लग जाते हैं। अत: क्रोध करते-करते वह हमारा संस्कार भी बन सकता है और क्रोध की प्रवृत्ति बन जाने से हमें छोटी-मोटी बातों पर भी क्रोध आना स्वभाविक हो सकता है। जिस प्रकार किसी गुण का अभ्यास करते-करते वह हमारा संस्कार बन जाता है, उसी प्रकार यदि हम यथासम्भव क्रोध से बचने का प्रयास करते रहें, तो वह भी हमारा संस्कार बन जाएगा और हम क्रोध के दुष्प्रभाव से बच जाएँगे। यदि अभ्यास के प्रभाव से बुरे गुण आ सकते हैं, तो अभ्यास के द्वारा अच्छे गुण भी ग्रहण किए जा सकते हैं।

इच्छापूर्ति न होना – जब हमारी इच्छा के अनुरूप कुछ नहीं होता, तो हमें क्रोध आता है। क्रोध आने का यह एक सामान्य कारण है। सभी को यह लगता है कि वे ठीक चल रहे हैं और उनके अनुसार ही समस्त कार्य होने चाहिए। जब एक की इच्छा के अनुसार दूसरे की इच्छा नहीं मिलती या एक की इच्छा के अनुसार दूसरे का कार्य नहीं होता, तब वह क्रोध का रूप ले लेता है। यदि हम मात्र अपनी इच्छापूर्ति के विषय में सोचेंगे या हम दूसरों की इच्छा को कोई महत्त्व न दें, तो क्रोध का परिमाण अधिक होगा। पर यदि हम मिलजुल कर सामंजस्य पूर्ण ढंग से कार्य करें तो हम इस प्रकार के एक तरफा क्रोध से बच सकते हैं।

अहंकार – यदि हम सूक्ष्म विचार करें तो पाएँगे कि क्रोध का मूल कारण हमारा अहंकार होता है। जब हम अपने किसी मत, विचार या व्यवस्था को अपने अनुरूप करने की प्रबल आकांक्षा रखते हैं, पर यदि उसमें कोई हस्तक्षेप करता है, तो हमारे अहंकार को चोट लगती है और हम क्रोधित हो जाते हैं। यदि हम निष्पक्ष रूप से विचार करें, तो पाएँगे कि हमारे क्रोध का कारण हमारा अहंकार था और यदि उस समय हम अपने अहंकार को छोड़ देते, तो हम उस क्रोध से स्वत: बच सकते थे। अहंकार क्रोध का पोषण करता है। **(क्रमश:)**

बिलासपुर नाम कैसे पड़ा?

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, १ नवम्बर को छत्तीसगढ़ राज्य स्थापना दिवस के रूप में मनाया जाता है। आज हम छत्तीसगढ़ में जन्मी वीरांगना बिलासा दाई केवट के जीवन-परिचय और इतिहास के बारे में जानेंगे।

यह कहानी ४०० वर्ष पुरानी है। प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ की राजधानी रतनपुर हुआ करती थी। उस समय कलचुरी शासक धर्मपरायण राजा कल्याण साय का राज्य था। इसी रतनपुर से सटे इलाके में परशुराम और वैसारता बाई के घर बिलासा का जन्म हुआ था। उस समय अरपा नदी के दोनों तरफ घने जंगल हुआ करते थे, जीवनदायिनी अरपा नदी के किनारे रामा ने कुटुम्ब समेत डेरा डाला था। रामा केवट नाविकों का मुखिया था। अरपा के किनारे महुआ, पलास, आम के पेड़ होने के कारण अरपा का तट सुरम्य और मन-मोहक हुआ करता था। रामा केवट की बेटी बिलासा परम सुन्दरी होने के साथ-साथ वीर भी थी। इसलिए सुन्दरता से ज्यादा उसके गुणों की चर्चा चारों तरफ होती थी। जल्दी ही उसका गाँव बढ़ने लगा था। वहाँ किसान, बुनकर, लोहार सभी आ गये थे। इन सबका रामा ने खुले दिल से स्वागत किया। रामा का समूह नाव चलाने के साथ मछली पकड़ने का कार्य किया करता था। बिलासा भी मछली पकड़ती, नाव चलाती और शिकार भी किया करती थी।

जब एक बार गाँव के सभी आदमी (पुरुष) मछली पकड़ने नदी गये थे, गाँव में केवल औरतें और बच्चे ही थे, तब वहाँ जंगली सुअर घुस आया। बिलासा ने अपने साहस का परिचय देते हुए सुअर को भाले से मार गिराया और बच्चों और औरतों की रक्षा की। इसके बाद चारों तरफ उसकी वीरता की कीर्ति फैलने लगी।

अब रामा ने बिलासा के लिये योग्य वर की तलाश आरम्भ की। बंशी नामक युवक उनको मिला, वह भी वीर था। नाव चलाने के साथ ही वह मछलियाँ भी बहुत पकड़ता था। बिलासा की शादी बंशी से हो गई, दोनों सुखी जीवन बिताने लगे। बिलासा की नित्य नयी कहानी चारों तरफ गुँजने लगी।

एक बार राजा साय शिकार खेलने जंगल गये। घोड़े पर दौड़ते हुए राजा बड़े शिकार की तलाश में जंगल के भीतर बहुत दूर निकल गये। जंगल बड़ा होने के कारण वे अंदर मार्ग भटक गए तथा अपने सिपाहियों से बिछड़ गये। समय बीतता गया और शाम हो आई। उन्हें प्यास लगी थी। पास में नदी देख वे जल पीने जैसे ही गये, एक जंगली सुअर ने उनपर हमला कर दिया। उसी दिशा से बंशी गाँव लौट रहा था। उसने राजा को देखा और उठाकर गाँव ले आया। बिलासा ने राजा की खूब सेवा की।

राजा स्वस्थ हो गये। राजा ने बंशी और बिलासा का आभार प्रकट करने के लिए एक जागीर उन्हें दे दी। इस जागीर से और गाँव जुड़ते गये, मानो एक छोटा-सा नगर बस गया हो। राजा ने कहा कि यह नगर बिलासा के नाम से याद किया जायेगा तथा नाम मिला – **बिलासपुर**। तब से यही नाम चला आ रहा है।

बिलासा ने इस शहर को खूब सजाया। बिलासा को एक दिन राजा का बुलावा आया। वास्तव में राजा को दिल्ली से जहाँगीर का बुलावा आया था। वहाँ मेला लगा था, जहाँ जाकर कुछ करतब दिखाने थे।

दिल्ली में जब बिलासा ने तलवारबाजी का करतब दिखाया तो जहाँगीर भी देखता रह गया और राजा कल्याण साय का खूब सम्मान किया। इससे राजा ने प्रसन्न होकर बिलासा को एक खड्ग भेंट में दिया। उसकी वीरता की चर्चा घर-घर में होने लगी और उसकी गाथा गीतों में गाये जाने लगे।

कहा जाता है एक बाहरी शासक ने बिलासा की नगरी पर आक्रमण कर दिया था। लड़ाई के दौरान उनके पति बंशी और बिलासा वीरगति को प्राप्त हुई। बिलासा ने संध्या काल में नाव में जाते हुए भोजली भाद्र प्रतिपदा के दिन वीरगति को प्राप्त किया था। इसलिए पचरीघाट का जो **'भोजली'** है उनकी स्मृति में आज भी प्रति वर्ष मनाया जाता है।

तो बच्चो, वीरांगना बिलासा देवी के जीवन से दया, सेवाभाव, वीरता, सरलता, साहस, आज्ञाकारिता, अहंकारशून्यता इत्यादि गुण सीखकर हम भी महान बन सकते हैं। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/३)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

निर्गुण निराकार के उपासक भक्त के लक्षण

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।३।।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।४।।

तु ये इन्द्रियग्रामम् सन्नियम्य (परन्तु जो लोग इन्द्रियों को वश में करके) अचिन्त्यम् सर्वत्रगम् अनिर्देश्यम् च कूटस्थम् (मन से परे, सर्वव्यापी, वाणी से परे और एकरस) ध्रुवम् अचलम् अव्यक्तम् अक्षरम् पर्युपासते (नित्य, अचल, निराकार अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं) ते सर्वभूतहिते रता: सर्वत्र समबुद्धय: (वे सर्वभूतहित में रत सर्वत्र समभाव वाले योगी) माम् एव प्राप्नुवन्ति (मुझको ही प्राप्त होते हैं)।

''परन्तु जो लोग इन्द्रियों को वश में करके मन से परे, सर्वव्यापी, वाणी से परे और एकरस, नित्य, अचल, निराकार अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे सर्वभूतहित में रत, सर्वत्र समभाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।''

जो लोग अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त ब्रह्म की सब प्रकार से उपासना करते हैं। उस तत्त्व को सब जगह व्याप्त, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, अव्यक्त, निराकार, निर्गुण ब्रह्म मानते हैं। जो सम्यक् रूप से अपनी समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रण में ले आते हैं और सभी जगह जिनकी बुद्धि एक जैसी है, किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है, जो सब प्राणियों के कल्याण में लगे हैं, वे मुझे ही प्राप्त करते हैं; ऐसा भगवान कहते हैं। इससे ज्ञानी और भक्त का थोड़ा-सा अन्तर स्पष्ट हो गया। तीसरे श्लोक में जो आठ प्रकार से उपासना करनेवाले ज्ञानी का लक्षण बताया गया, उसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए भगवान कहते हैं, 'ज्ञानी निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना तो करता है, पर उसके जीवन में उस उपासना के फलस्वरूप क्या आता है, जानते हो?' सर्वप्रथम तो उसकी समस्त इन्द्रियाँ पूर्ण रूप से उसके वश में हो जाती हैं। दूसरे वह सभी के प्रति समबुद्धि हो जाता है। किसी के प्रति पक्षपात नहीं रखता। उसका जीवन सब प्राणियों के कल्याण में लगा रहता है। ऐसे ज्ञानी मुझको ही पाते हैं। यहीं भक्त का अन्तर दिखता है। क्योंकि भक्त के पास भगवान स्वयं आते हैं। भक्त की श्रद्धा छोटे बच्चे के समान है, जिसके पास चलकर स्वयं माँ को ही जाना पड़ता है।

आइये, अब निर्गुण उपासना और सगुण उपासना का अन्तर समझने का प्रयास करें। ज्ञानी तो स्वयं ही पार हो जाता है। अब यदि कोई नदी को पार करना चाहे, तो या तो स्वयं तैरकर पार चला जाए या किसी तैराक की मदद ले ले या नौका में बैठकर पार चला जाए। भगवान कहते हैं, जिन भक्तों ने मुझमें अपने मन को आविष्ट कर लिया, उनका उद्धार मुझे ही करना पड़ता है। वे ही नौका लेकर आते हैं और भक्त को उसमें बैठाकर वे नौका खेते हैं। नौका में भी भक्त भगवान के साथ रहता है। पार हो रहा है,

तब भी भगवान का ही साथ बना हुआ है। सब समय उसे प्रियतम का साथ मिला रहता है। भक्त सब प्रकार से आनन्द में रहता है, वह अपनी इन्द्रियों से अपने उपास्य को देख भी लेता है। देखने के बाद उनका ज्ञान और उनसे तद्रूपता तो भक्त को भी मिल जाते हैं। पर उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए उसे अपने मन में विकलता लानी पड़ती है। अपने आपको पूरी तरह से भगवान के भरोसे छोड़ देना पड़ता है। निर्गुण उपासना का प्रारम्भ होगा जिज्ञासा से और उसके लिये आवश्यकता होगी वैराग्य की। सगुण उपासना जो भक्ति है, उसका मार्ग है श्रद्धा का ।

निर्गुण-निराकार तत्त्व कैसा है?

निराकार तत्त्व का कभी क्षरण नहीं होता और जिसका क्षरण नहीं होता, वह सर्वव्यापी होता है। क्षरण या नाश तो उसका होता है, जो सीमित होता है। जिसके अंग-प्रत्यंग हैं, अवयव हैं, उसका नाश तो होगा ही, परन्तु जो अवयवहीन है, सर्वत्र है, सभी में भरा हुआ है, उसका नाश कैसे हो सकता है?

वह तो सभी में व्याप्त है। अत: अनिर्देश्य है। वस्तुत: निर्देशन पाँच प्रकार से होता है –

१. जाति से - इस निराकार तत्त्व की कोई जाति तो है नहीं कि उसे दूसरी जातियों से पृथक् करके समझाया जा सके।

२. गुण से - आत्मा या इस निर्गुण निराकार तत्त्व में कोई विशिष्ट गुण तो है नहीं कि खट्टा, मीठा, कषाय कुछ है।

३. क्रिया से - जैसे रसोई बनानेवाला रसोइया कहलाता है। पढ़ानेवाला शिक्षक कहलाता है। इस सर्वव्यापी तत्त्व में ऐसी कोई क्रिया भी नहीं है।

४. रूढ़ि या परम्परा से - कमल को पङ्कज कहते हैं, क्योंकि परम्परा के अनुसार, वह पङ्क में से जन्म लेता है। अब इस निराकार तत्त्व का जन्म कहाँ से हुआ, कैसे बताएँ? कृष्ण को तो बता सकते हैं कि वे वसुदेवनन्दन हैं।

५. सम्बन्ध से - अपना कोई सम्बन्धी है, हम किसी के सम्बन्धी हैं, उससे पहचान बनती है। अब इस आत्मा का किससे सम्बन्ध बताकर समझाएँ?

ये पाँचों लक्षण उस पर लागू नहीं होते। इसलिए आत्मा के लिए कहा गया है कि वह अनिर्देश्य तत्त्व है। वह अव्यक्त भी है। कभी व्यक्त नहीं होता, प्रकट नहीं होता, इन्द्रियगम्य नहीं होता। वह अचिन्त्य है। मन उसका चिन्तन नहीं कर पाता। वाणी उसको पकड़ नहीं पाती। वह सर्वव्यापी है। कूटस्थ है। जगत् में सब जगह परिवर्तन हो रहा है, पर उस सबके बीच स्थित रहकर भी अचल है, ध्रुव है, सत्य है। संसार का यही एकमात्र निश्चित तत्त्व है। इस निराकार तत्त्व को अक्षर, अव्यक्त, अनिर्देश्य, अचिन्त्य आदि जो संज्ञायें दी जाती हैं, उससे अर्थ निकाला जा सकता है कि शायद वह शून्य है। शून्य भी सर्वत्र रहता ही है। इसीलिए जोर देकर बताया कि यह शून्य नहीं, ध्रुव एक तत्त्व है। माया के बीच बिना हिले-डुले स्थित इस जीवन के एकमात्र ज्ञेय तत्त्व की उपासना ज्ञानी करता है।

साकार उपासक की उपासना की हर एक चेष्टा दिखाई देती है, पर निराकार उपासक की कोई चेष्टा दिखाई नहीं देती। अत: उसकी उपासना-विधि के विषय में शंका हो सकती है। परन्तु ऐसी शंका निर्मूल है, क्योंकि उसी उपासना के फलस्वरूप कुछ लाभ उसके जीवन में दिखाई देते हैं। जैसे –

१. इन्द्रियों पर पूरी तरह विजय प्राप्त कर लेना।

२. सबमें समबुद्धि हो जाना। किसी के प्रति पक्षपात न रखना।

३. सब जीवों के कल्याण में रत रहना।

निर्गुण निराकार मार्ग की चुनौतियाँ

ज्ञानमार्ग आलम्बनरहित

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।५।।

तेषाम् अव्यक्तासक्त चेतसाम् (उस निराकार ब्रह्म में निष्ठा रखनेवालों को) क्लेश: अधिकतर: (परिश्रम अधिक है) हि देहवद्भि: अव्यक्ता गति: (क्योंकि देहाभिमानी से निराकार की गति) दु:खम् अवाप्यते (कठिनाई से प्राप्त की जाती है)।

''उस निराकार ब्रह्म में निष्ठा रखनेवालों को परिश्रम अधिक है, क्योंकि देहाभिमानी से निराकार की गति कठिनाई से प्राप्त की जाती है।''

ज्ञानी की तो बड़ी अद्भुत स्थिति है। अपने ही बल पर संसार समुद्र को भी वह पार कर लेता है। किसी का, यहाँ तक कि भगवान का भी सहारा नहीं होता। उसका आत्मविश्वास, उसके साहस के भाव बड़े अच्छे लगते हैं।

अर्जुन जैसे साधक भक्त सोचने को विवश हो सकते

हैं कि क्या हम भी इस प्रकार की साधना कर सकते हैं? भगवान कहते हैं कि ऐसी साधना तो की जा सकती है, परन्तु उसमें अनेक क्लेश हैं। जो भक्त है, सगुण साकार की उपासना करता है, अपने मन को अपने उपास्य में आविष्ट करके उससे परम श्रद्धापूर्वक नित्ययुक्त रहता है, उसमें भी कठिनाइयाँ तो कम नहीं हैं। कठिनाइयाँ तो दोनों मार्गों में हैं, पर ज्ञान मार्ग में अधिक कठिनाइयाँ हैं। दोनों ही प्रकार के साधक मन को संसार के विषयों से हटाकर भगवान में स्थापित करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु भक्ति के रास्ते में एक आलम्बन है, एक भगवान है। भक्त के समक्ष समस्त माधुर्य से परिपूर्ण उसके इष्टदेवता हैं और उनके रूप की मधुरिमा में अपने मन को रमाने में उसे अधिक कठिनाई नहीं होती। परन्तु जो अव्यक्त मन की पकड़ में नहीं आता, इन्द्रियों की पकड़ में नहीं आता, उसमें अपने मन को स्थापित करना बड़ा कठिन होता है। इसीलिए भगवान बता रहे हैं कि ज्ञान के रास्ते में क्लेश अधिक हैं। कठिनाइयाँ अधिक हैं। अव्यक्त की गति में दुख इसलिए है कि हम देहबोध से पूरी तरह से भरे हुए हैं। जब हम साधना करते हैं, तब यह देहबोध तो बना ही रहता है, पर भक्ति के रास्ते में यह देहबोध उतना आड़े नहीं आता, क्योंकि उसमें हम अपनी इस देह को साधन मानते हैं। शरीर के द्वारा होनेवाली सब क्रियाओं को हम भगवान के साथ जोड़ लेते हैं। इसलिए यह देहबोध उसमें बाधक तत्त्व के रूप में उपस्थित नहीं होता। पर जब हम निराकार का चिन्तन करते हैं, तो बीच में देहबोध आकर बाधा उपस्थित करता है। जब तक हम अपने को देहवान् समझते रहेंगे, तब तक उस अव्यक्त में, अचिन्त्य में मन की किसी भी प्रकार की गति हो ही नहीं सकती।

देहबोध साधना में बाधक

उदाहरणार्थ जब तक नारियल कच्चा है और उसमें रस भरा है, तब तक आप उसके गूदे को चाकू से काटकर छिलके से अलग नहीं कर सकते, गूदा छिलके से इतना एकरूप हो जाता है। परन्तु नारियल का पानी सूख जाने पर उसका गूदा अपने आप छिलके से अलग होकर खड़-खड़ करने लगता है। इसी प्रकार आज वासनारूपी रस हमारे अन्दर लबालब भरा होने के कारण अव्यक्त, अचिन्त्य आत्मा या परमात्मा देहरूपी छिलके के साथ एक हुआ-सा मालूम होता है। मानो आत्मा है गूदा, देह या मन है छिलका और आत्मा का चिन्तन करना चाहते हैं, तो या तो देह का चिन्तन होता है या मन का चिन्तन होता है। आत्मा का ध्यान करते ही मन में वृत्ति उठती है। पहली बात तो यह है कि मन इस देह की सीमा को पार नहीं कर पाता। इस शरीर में ही फँसा रहता है। आत्मा का चिन्तन करना चाहते हैं, तो आत्मा हमारे समक्ष देह के रूप में ही उपस्थित होता है। जो लोग साधना में कुछ आगे बढ़ जाते हैं, वे आत्मा को जिस भाव के रूप में देखते हैं, वह भाव मन ही है। मन के स्तर से ऊपर उठकर आत्मा का चिन्तन नहीं हो पाता। इसीलिए भगवान यहाँ अर्जुन से कहते हैं कि जबतक देह-बोध बना हुआ है, तब तक अव्यक्त की उपासना बहुत ही कठिन होती है। यह जो **त्वं-पदार्थ** है, उसका शोधन जब तक नहीं होता, तब तक **तत्-पदार्थ** का ठीक-ठीक अनुभव भी नहीं होता। ज्ञान का चरम उपदेश है – **तत्त्वमसि** – तुम वही आत्मा हो, जो सब प्रकार के बन्धनों से परे है। जो सब प्रकार की सीमाओं से बाहर है। गुरु उपदेश देते हुए अधिकारी से कहते हैं कि तुम वही हो, वही परमात्मा हो। यह जो **त्वं** है, जब तक इसका शोधन नहीं होता, तब तक हम **तत्** का अनुभव भी नहीं कर पाते। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस प्रकार की हमारी वृत्ति होती है, उसी प्रकार हम संसार को देखते हैं। यदि हमारे मन में कहीं कलुष है, तो हम संसार में भी सब जगह उसी कलुष को देखते हैं। साधु पुरुष जीवन में सर्वत्र साधुता ही देखता है। जीवन में कहीं असत्य दीखता है, तो वह सत्य की नींव पर खड़ा होकर दीखता है। अशुभ कहीं भासता है, तो वह शुभ के कगार पर खड़ा होकर भासता है। जैसे जब साँप भासता है, तो उसका आधार होता है रस्सी। जो कहीं है नहीं, वह दीखता है अज्ञान के कारण। उड़िया बाबा कहते हैं, 'अशुभ तो कहीं है ही नहीं। सब कुछ शुभ ही है। परमेश्वर ही है। यदि तू ज्ञानी है, तो ऐसा समझ कि सब कुछ आत्मस्वरूप है। यदि तू भक्त है, तो ऐसा समझ कि तेरे प्रियतम ही नाना रूपों में आए हुए हैं।' सर्वत्र उन्हीं की सत्ता है। ज्ञानी आत्मा के रूप में संसार को देखता है, अत: उसके लिए कुछ अशुभ नहीं और भक्त प्रेम की दृष्टि से संसार को देखता है। उसे अपना ही इष्ट, अपना ही प्रियतम संसार में दृष्टिगत होता है, इसलिये उसको भी कहीं कुछ अशुभ दिखाई नहीं देता।

शेष भाग पृष्ठ ५८४ पर

सबल और सशक्त युवा

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

''बलवान राष्ट्र वही होता है, जिसकी तरुणाई सबल होती है, जिसमें मृत्यु को वरण करने की क्षमता होती है, जिसमें भविष्य के स्वप्न होते हैं और कुछ प्राप्त करने का उत्साह होता है, वही तरुणाई है।'' – महादेवी वर्मा

श्रीकान्त बोल्ला जन्म से अन्धे थे। उन्होंने आन्ध्र प्रदेश की दसवीं कक्षा की राज्य बोर्ड परीक्षा ९० प्रतिशत से अधिक अंकों के साथ उत्तीर्ण की। परन्तु बोर्ड ने कहा कि वे उसके बाद मात्र कला (आर्ट्स) विषय ही ले सकते हैं। दिव्यांग होने के कारण उन्हें ग्यारहवीं कक्षा में विज्ञान संकाय में प्रवेश देने से मना कर दिया गया था।

अवसर से वंचित होने के पश्चात्, उन्होंने विज्ञान संकाय में प्रवेश लेने हेतु न्याय माँगने के लिए न्यायालय जाने का निर्णय लिया। उन्होंने सरकार के इस निर्णय के विरुद्ध अभियोग चलाया और छह महीने तक अभियोग चलता रहा। अन्त में, उन्हें एक सरकारी आदेश प्राप्त हुआ, जिसमें कहा गया कि आप (श्रीकान्त बोल्ला) विज्ञान विषय ले सकते हैं, परन्तु 'अपने जोखिम' पर। आदेश उनके पक्ष में आया और उन्होंने ग्यारहवीं कक्षा में विज्ञान संकाय में प्रवेश लिया। उन्होंने बहुत परिश्रम किया और बारहवीं की बोर्ड परीक्षा में ९८ प्रतिशत अंक अर्जित किये।

फिर उन्होंने आई.आई.टी. और अन्य अच्छे इंजीनियरिंग कॉलेजों के लिए आवेदन किया, लेकिन भारत में उन्हें कोई प्रवेश नहीं मिला। इसके बाद उन्होंने यू.एस.ए. के विश्वविद्यालयों में आवेदन किया और शीर्ष चार के विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिला। फिर वे प्रतिष्ठित मैसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में शामिल होनेवाले पहले अन्तर्राष्ट्रीय नेत्रहीन छात्र बन गए।

इसके बाद वे भारत में परिवर्तन लाने के लिए वापस आए। उन्होंने बोलेंट इंडस्ट्रीज की स्थापना की। इसका वार्षिक टर्न ओवर ८० करोड़ रुपए से अधिक है।

वे किसी के लिए बोझ नहीं बने, बल्कि उन्होंने लगभग ३००० छात्रों को नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करने के लिए

वित्तीय सहायता की और अपनी कम्पनी के माध्यम से सैकड़ों दिव्यांग लोगों को आजीविका प्रदान की।

युवाओं की क्षमता का सदुपयोग किया जाना चाहिए। इसके लिए उनका उचित मार्गदर्शन अति आवश्यक है। उनकी सेवाओं को राष्ट्र निर्माण के कार्य में लगाया जाए। युवा इस श्रेष्ठ कार्य में अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार ऐसी अनगिनत योजनाओं में अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर सकते हैं।

पिकासो नामक एक बहुत प्रसिद्ध चित्रकार थे। उनका जन्म स्पेन में हुआ था। पूरे विश्व के लोग उनकी पेंटिंग को बहुत पसन्द करते थे। उस समय उनकी पेंटिंग करोड़ों रुपए में बिका करती थी। एक बार पिकासो किसी कार्य से कहीं बाहर गये और उन्होंने रात को किसी छोटे नगर में होटल में रात्रि निवास किया। वहाँ के लोग उन्हें नहीं पहचानते थे कि वे इतने प्रसिद्ध चित्रकार हैं।

उसी होटल में एक महिला भी निवास कर रही थी। उसकी दृष्टि पिकासो पर पड़ी और वह उनको पहचान गयी। वह महिला पिकासो के पास गयी और बोली, 'श्रीमान्, मैं आपकी बहुत बड़ी प्रशंसिका हूँ। कृपया, मेरे लिए एक पेंटिंग बना दीजिए।'

पिकासो ने कहा, 'इस समय मेरे पास यहाँ पेंटिंग करने की कोई सामग्री नहीं है, मैं फिर कभी बना दूँगा।'

महिला हठ करने लगी कि यदि मैं आपसे फिर कभी मिल नहीं पाई ! इसलिए आप अभी ही कुछ बनाकर दीजिए।

पिकासो ने अपनी जेब से एक छोटा सा कागज का टुकड़ा निकालकर होटल के अभ्यर्थक से पेन लिया और २० सेकंड से भी कम समय में उसमें कुछ बनाकर उससे कहा, यह लो, मिलियन डॉलर की पेंटिंग।

महिला बिना कुछ बताए वहाँ से चली गयी और विचार करने लगी कि पिकासो ने उसे आनन-फानन में कुछ भी बनाकर दे दिया है और उसे मूर्ख बना रहे हैं। जब महिला ने बाजार में जाकर पेंटिंग की कीमत पता की, तब यह जानकर आश्चर्यचकित हुई कि वह पेंटिंग सच में मिलियन डॉलर की थी।

अब यह महिला अगले दिन पिकासो से मिली और कहने लगी कि आपने २० सेकंड से भी कम समय में मिलियन डॉलर की पेंटिंग बना दी, अब आप मुझे भी पेंटिंग बनाना सिखा दीजिए। मैं २० सेकंड में नहीं बना पाऊँगी, लेकिन सम्भवत: १० मिनट में तो कुछ बना ही सकूँगी।

पिकासो मुस्कराते हुए बोले, 'जो पेंटिंग मैंने २० सेकंड में बनाई है, इसे सीखने के लिए मुझे ३० वर्ष लगे हैं। मैंने अपने जीवन के ३० वर्ष इसमें दक्षता प्राप्त करने में लगा दिए हैं, तुम भी अपने जीवन के इतने वर्ष सीखने के लिए दो, सीख जाओगी।' महिला के पास इसका कोई प्रत्युत्तर नहीं था।

अब हम जान गये कि सफलता तो आसानी से मिल जाती है, परन्तु उसकी तैयारी में कठोर परिश्रम और अपना सम्पूर्ण जीवन भी कई बार न्योछावर करना पड़ता है।

आइए, छोट-छोटे वृत्तान्तों द्वारा जानते हैं कि कठिन परिश्रम में ही सफलता का रहस्य छिपा है।

महाराष्ट्र के जालना जिले के एक गरीब ऑटो चालक पिता के पुत्र अंसार अहमद शेख ने वर्ष २०१५ में प्रथम प्रयास में सिविल सेवा की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे पुणे के प्रतिष्ठित कॉलेज में बी.ए. (राजनीति विज्ञान) पास करने के बाद प्रतिदिन बारह घंटे सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी करने लगे। प्रथम प्रयास में ३७१वाँ स्थान प्राप्त किया। उनके पिता जीवन भर ऑटो चलाते रह गए, लेकिन निर्धन परन्तु गुणवान (गुदड़ी के लाल) अंसार युवाओं के लिए मिसाल बन गए।

नीरीश राजपूत का जन्म मध्य प्रदेश के भिंड में एक परिवार में हुआ। उनके पिता वीरेन्द्र दर्जी का काम करते हैं। यद्यपि घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उन्हें सरकारी स्कूल में पढ़ाई करते हुए काफी संघर्ष करना पड़ा। फिर भी उन्होंने चौथे प्रयास में सिविल सेवा परीक्षा में ३७०वाँ स्थान प्राप्त किया।

दृढ़ संकल्प के साथ कठिन परिश्रम से अपनी गरीबी को कैसे पछाड़ा जा सकता है, हृदय कुमार से सीखें। वे केंद्रपाड़ा (ओडिशा) के गाँव अंगुलाई निवासी बीपीएल धारक किसान के पुत्र हैं। इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत प्राप्त घर में उनके परिवार का गुजर-बसर होता था। उनकी भी सफलता की राह में बाधाएँ कुछ कम नहीं थीं। हृदय की पढ़ाई-लिखाई सरकारी स्कूल में हुई, लेकिन उत्कल विश्वविद्यालय में समेकित एमसीए कोर्स के साथ-साथ उन्होंने तीसरे प्रयास में सिविल सेवा परीक्षा में १०७९वाँ स्थान प्राप्त किया।

इसी तरह एक रिक्शा चालक के पुत्र गोविन्द जायसवाल ने गरीबी के साथ कठिन संघर्ष करते हुए सिविल सेवा परीक्षा में ४८वाँ स्थान प्राप्त किया था।

गहन ऊर्जा और उच्च महत्त्वकांक्षाओं से ओतप्रोत युवा राष्ट्र और समाज को उच्च शिखर पर ले जाते हैं। जीवन मूल्यों से युक्त युवा राष्ट्र के निर्माण में सर्वाधिक योगदान देते हैं। लेकिन आधुनिक भौतिक विलासिता की चकाचौंध से युवा नकारात्मक विचारों से संक्रमित हो रहे हैं। वे धैर्य के अभाव के कारण शीघ्रता से आगे बढ़ने की होड़ में कठिन परिश्रम को छोड़ कर सरलतम मार्ग (शोर्टकट्स, जिसमें परिश्रम न करना पड़े) का अवलम्बन करते हैं। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन ही उनका आदर्श लक्ष्य बन गया है। लक्ष्य को प्राप्त करने में जब वे असफल हो जाते हैं, तो वे अवसादग्रस्त हो जाते हैं। युवाओं की इस नकारात्मकता को सकारत्मकता में परिवर्तित करने के लिए स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा लेनी होगी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था – यदि आप भारत को जानना चाहते हैं, तो विवेकानन्द को पढ़िये। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पाएँगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।

युवाओं के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे कठिन परिश्रम और ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को सबल और सशक्त बनायें। क्योंकि जब वे सबल और ज्ञान से ओतप्रोत होंगे तभी उनमें आत्मविश्वास का उदय होगा। ○○○

सत्संग माने स्नान करके शुद्ध होना है

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

सुख-दुख हमारे कर्मों का ही फल है। इसलिए अपने सुख-दुख के लिए दूसरों को दोष नहीं देना है। रुपया इतना आकर्षित करता है कि मनुष्य प्राण छोड़ देता है, लेकिन रुपया नहीं छोड़ता। धन में दोष नहीं है, धन के लोभ में दोष है। वह लोभ ही बन्धन का कारण है। लोभ के कारण उनका मन दुर्बल हो जाता है। इसलिए ठाकुरजी कहते हैं, नाम में रुचि और ईश्वर के प्रति समर्पण भाव रखना चाहिए। इससे बहुत-से दुख कम हो जाते हैं। पूर्व जन्म के संस्कार और इस जन्म के संस्कार मिलाकर हमारा स्वभाव बनता है। ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि मेरी पुकार भगवान सुनेगें ही। ऐसा विश्वास रखने से विश्वास और दृढ़ होता है। इससे मन धीरे-धीरे शान्त हो जाता है। शान्त मन से जप भी अच्छा होता है। उसके बाद जपात् सिद्धिः। जप से सिद्धि मिलती है। सिद्ध माने इंद्रियों का मालिक होना। इंद्रियों की दासता से मुक्त हुए बिना हमें मुक्ति नहीं मिलेगी, भगवान का दर्शन नहीं होगा। पिछले जन्म में सभी इंद्रियों के भोग भोगे हैं। इस जन्म में भी इंद्रियों के भोग भोगे हैं, इसलिये इंद्रियाँ भोग में रम जाती हैं। अगर हम भक्ति मार्ग से जायेंगे, तो इंद्रियों के सुख को अनित्य समझेंगे, ईश्वर से प्रार्थना करेंगे, नाम जप करेंगे, तो हमारी इंद्रियाँ शिथिल हो जायेंगी।

मनुष्य में स्वाधीनता है, वह चाहे तो भगवान भी बन सकता है, चाहे तो राक्षस भी बन सकता है। हमें कैसे रहना है, यह हमारे मन पर निर्भर है। हम एक तिनका भी अपने साथ नहीं ले जा सकेंगे। ये संसार तो उपयोग करने के लिए है, उसमें फँसने के लिए नहीं। इसीलिए कहते हैं, थोड़ा-सा विचार करो, तो दिखता है कि संसार में केवल दुख ही है। इसलिए हमेशा मृत्यु का स्मरण रखो। एक दिन हमें छोड़कर जाना ही है, तब हम जीवित रहते ही सब छोड़ सकते हैं। इसलिए संसार में जितनी आवश्यकता है, उतनी पूर्ति करो। लेकिन लोभ मत करो। तुम नियमित रूप से जैसे जीवन बिता रहे हो, वैसे ही बिताओ, लेकिन कुछ नियमों का पालन करो।

रात का भोजन कम करो। अधिक भोजन करने से नींद नहीं खुलेगी। नींद नहीं खुलेगी, तो भगवान का नाम-जप नहीं होगा। अपने को कदापि कमजोर मत समझो। अपने आप पर विश्वास रखो। अपनी आत्मा पर विश्वास रखने से तुम विश्वविजयी हो जाओगे। हमारा विकास और पतन हमारे हाथ में ही है। अगर हम मन को वश में करेंगे, तो सारा संसार हमारे वशीभूत हो जायेगा, हम विश्वविजयी बनेंगे। आध्यात्मिकता का शुभारम्भ यहीं से है। जिसका स्वयं पर विश्वास नहीं, उसका ईश्वर पर भी विश्वास नहीं रहता। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, जो स्वयं पर विश्वास करता है, वह आस्तिक है। संसार असार है, केवल ईश्वर ही सत्य हैं। इंद्रिय-सुखों से वैराग्य होगा, तब भगवान में अगाध विश्वास होगा और भगवान के दिव्य प्रेम का हमें आस्वाद मिलेगा। भगवान पर विश्वास होने से अपने ऊपर विश्वास होगा। आध्यात्मिकता की उपलब्धि तो ईश्वर की कृपा से ही होती है। लेकिन प्रयत्न तो हमें करना है। सत्संग करना स्नान के समान है। जैसे स्नान करने से शरीर का मैल निकल जाता है, वैसे ही सत्संग से मन का मैल निकल जाता है।

आध्यात्मिक जीवन बिता रहे हैं, तो हम असत् कार्य नहीं करेंगे। किसी से घृणा नहीं करेंगे। किसी का बुरा नहीं सोचेंगे। भगवान का सच्चा भक्त किसी का बुरा नहीं सोचता। भगवान का सच्चा भक्त उदासीन हो जाता है। किसी से शत्रुता नहीं करता। ये सच्चे भक्त के लक्षण हैं। जिसका मन स्वस्थ है, वह हमेशा आनन्द में रहता है। हमें अपने २४ घंटे के जीवन में थोड़ा समय भगवान के लिए निकालना है। सुबह नींद खुलते ही भगवान का दर्शन और नामस्मरण करना है। पूरा दिन सत्चिन्तन में जाये, इसके लिए भगवान से प्रार्थना करनी है। भगवान का नाम-जप और दर्शन करके ही दिन का शुभारम्भ करना है और सोने के पहले भी भगवान से प्रार्थना करनी है। दिन का सब अच्छा-बुरा कर्म ठाकुरजी को अपर्ण करना है। हमें ऐसा नियम बना लेना चाहिए। नियम बना लेने से हमें आदत पड़ जायेगी। उसके बिना हम नहीं रह सकेंगे। आदत पड़ने से नियमितता आयेगी।

भगवान का नाम हर अवस्था में लिया जा सकता है। सब कुछ भगवान का ही है उनको ही सब समर्पित करना है। जीवन में कर्म बदलने की आवश्यकता नहीं। भगवान तो भावग्राही जर्नादन हैं। प्रत्येक कर्म समर्पण भाव से करने से भगवान प्रसन्न होते हैं। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (४१)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकार:। तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति।।५/२।।

अन्वयार्थ – ह (प्रसिद्ध है कि) स: (पिप्पलाद ने) (उत्तर के रूप में) तस्मै (उसको) उवाच (कहा) – सत्यकाम (हे सत्यकाम), यत् एतत् वै (यह जो प्रसिद्ध) परं च (सत्य या अक्षर पुरुष और) अपरं च (प्राण नामक सगुण) ब्रह्म (ब्रह्म है), (ये दोनों ही) ओंकार: (ओंकार-स्वरूप हैं) (क्योंकि यह दोनों का प्रतीक है)। तस्मात् (अत:) विद्वान् (उपासक) एतेन एव आयतनेन (इसी प्रतीक के आलम्बन से) (अपनी उपासना के अनुसार) एकतरम् (इन दोनों – पर या अपर ब्रह्म में से किसी एक की) अन्वेति (उपलब्धि करता है)।

भावार्थ – पिप्पलाद ने उसे उत्तर दिया – हे सत्यकाम, ये जो प्रसिद्ध पर तथा अपर ब्रह्म हैं, ये दोनों ही ओंकार-स्वरूप हैं, इसलिये यह ओंकार ब्रह्म का प्रतीक है, ऐसा जानकर व्यक्ति इस (ओंकार-रूप) प्रतीक का आधार लेकर पर ब्रह्म या अपर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

भाष्य – इति पृष्टवते तस्मै स: ह उवाच पिप्पलाद: – एतद्-वै सत्यकाम ! एतद्-ब्रह्म वै परं च अपरं च ब्रह्म, परं सत्यम्-अक्षरं पुरुष-आख्यम् अपरं च प्राण-आख्यं प्रथमजं यद्-तद् ओंकार: एव ओंकारात्मकम् ओंकार-प्रतीकत्वात्।

भाष्यार्थ – ऐसा पूछे जाने पर पिप्पलाद ने उससे कहा – हे सत्यकाम, यह ब्रह्म ही पर (श्रेष्ठ) तथा अपर (निकृष्ट) ब्रह्म दोनों है। परब्रह्म वह है, जो सत्य एवं अपरिवर्तनीय है तथा जिसे पुरुष कहा जाता है; और प्रथम-जन्म लेनेवाला अपर ब्रह्म है, जिसे प्राण कहा जाता है; परन्तु ओंकार – ओंकार का प्रतीक होने से, ओंकार-स्वरूप ही है।

भाष्य – परं हि ब्रह्म शब्दादि-उपलक्षण-अनर्हं सर्व-धर्म-विशेष-वर्जितम् अत: न शक्यम् अतीन्द्रिय-गोचरत्वात् केवलेन मनसा अवगाहितुम्।

भाष्यार्थ – चूँकि सर्वोच्च ब्रह्म को (सीधे) शब्दों आदि के द्वारा नहीं कहा जा सकता है; सभी विशिष्ट गुण-भेदों से रहित होने के कारण ऐसा सम्भव नहीं है; और चूँकि यह इन्द्रियों के परे है, अत: केवल मन (भी) इसका पता नहीं लगा सकता।

भाष्य – ओंकारे तु विष्णु-आदि-प्रतिमा-स्थानीये भक्ति-आवेशित-ब्रह्मभावे ध्यायिनां तत्-प्रसीदति इति एतद्-अवगम्यते शास्त्र-प्रामाण्यात् तथा अपरं च ब्रह्म।

भाष्यार्थ – परन्तु जो लोग, भक्ति द्वारा आविष्ट ब्रह्म-भाव के साथ विष्णु आदि की प्रतिमा के समान ओंकार ध्यान करते हैं, उनके प्रति वह ब्रह्म अनुकूल हो जाता है (और स्वयं को प्रकट करता है)। यह बात शास्त्र-प्रमाण से ज्ञात होती है। इसी प्रकार वह अपर ब्रह्म का भी ॐकार के रूप में ध्यान करनेवालों पर (भी) प्रसन्न होता है।

भाष्य – तस्मात् परं च अपरं च ब्रह्म यद्-ओंकार इति उपचर्यते। तस्माद्-एवं विद्वान्-एतेनैव आत्म-प्राप्ति-साधनेन एव ओंकार-अभिध्यानेन एकतरं परमपरं वा अन्वेति ब्रह्म-अनुगच्छति नेदिष्ठं हि-आलम्बनम् ओंकारो ब्रह्मण:।।५/२।।

भाष्यार्थ – अत: पर और अपर ब्रह्म दोनों को गौण रूप से ओंकार कहा जाता है। इसीलिए विद्वान् आत्मा की प्राप्ति के साधन-रूप ही ओंकार के ध्यान द्वारा पर या अपर दोनों में से किसी एक ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि ओंकार ही ब्रह्म का निकटतम आश्रय या आधार है।। **(क्रमश:)**

काली पूजा विशेष

काली–नाम साधना : तत्त्व विमर्श

उत्कर्ष चौबे, बी.एच.यू, वाराणसी

भगवती काली के सम्बन्ध में यदि किसी ने तत्त्वत: कोई दार्शनिक ग्रन्थ लिखा है, तो नि:सन्देह साधक रामप्रसाद हैं। शास्त्रों से काली तत्त्व का निरूपण करके लम्बा-चौड़ा लहरी-भाष्य-वार्तिक-टीका-कारिका जैसी महान रचनायें बंगाल की संस्कृति से ठीक-ठीक मेल नहीं खातीं। सम्भवत: इसीलिये चर्यापदों के उत्तराधिकारी के रूप में राम प्रसाद की लेखनी से कालीतत्त्व प्रकाशित होता है। उदाहरणार्थ, हम उनके एक श्यामा संगीत को देखते हैं –

काली नाम बड़ा ही मीठा,
सदा गान कर पान कर इसे।
अरे धिक्कार है तेरे पर रसना,
फिर भी इच्छा करे खीर पीठा।।

इसका सामान्य अर्थ यह है कि काली का नाम अत्यन्त मधुर है, जिसका स्वाद केवल नियमित कीर्तन से ही लिया जा सकता है। फिर भी जिह्वा की क्या धृष्टता है! वह खीर व मीठे रसीले पीठे खाना चाहती है? हम कालीतत्त्व में कितना भी निमज्जित होना क्यों न चाहें, किन्तु यह शरीर मानो उस अमृतपान करने के पथ में मुख्य बाधा है। किसी भी प्रकार से ब्रह्मज्ञान के पथ पर अग्रसर होने नहीं देगा। घूम-फिर कर पुन: भोग-लिप्सा के द्वार पर ही खड़ा कर देगा। किन्तु यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यहाँ पर नाम-महिमा की व्याख्या की गई है। परमान्न व पिष्टकपूर्ण पंचव्यंजनमय तन्त्र-मन्त्र के आडम्बरों से श्रेष्ठ है एक काली का नाम। जिससे ब्रह्मानन्द का आस्वादन किया जा सकता है और वही परम तृप्तिकर भी है। तभी तो काली की नाम-साधना रामप्रसाद की दृष्टि में अन्य साधनाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ है। गोस्वामी तुलसीदास जी की लेखनी भी यही कहती है –

कलयुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहीं पारा।।

श्रीमाँ सारदा देवी नाम-गान की महिमा प्रतिपादित करते हुए कहती हैं – ''भगवन्नाम का बीज कितना छोटा है ! किन्तु समय आने पर उसी से भाव, भक्ति, प्रेम आदि कितनी बातें हो जाती हैं। वास्तव में उसी नाम के जप का अभ्यास करते-करते मनुष्य सिद्ध हो जाता है – '**जपात् सिद्धिः, जपात् सिद्धः, जपात् सिद्धिर्न संशयः।**'' तभी तो नानक देव कहते हैं – **''नानक दुखिया सब संसार, ओही सुखिया जो नामाधार।''**

आगे भक्तकवि प्रसाद कहते हैं –

निराकार व साकार, 'क'कार सबका घर है।
है भोग-मोक्ष धाम नाम, इसके बाद और क्या है?

यह अंश बहुत सारगर्भित है। अनन्त और अवर्णनीय ब्रह्म का सोपाधिक ब्रह्मस्वरूप क्या है? जल नहीं, वरन् क। संस्कृत में 'क' का अर्थ जल की ओर इंगित है। समस्त शास्त्रानुसार सृष्टि का बीज इसी जल में छिपा है। बृहदारण्यक उपनिषद की उक्ति है कि ब्रह्म सत्य का सार है, सत्य जल का है, जल पुन: (पूर्वकल्प में) जगत का है। अर्थात् ब्रह्म सत्य में स्थित है, सत्य जल में, जल जगत में एवं जगत पुन: ब्रह्म में स्थित है। इसलिए यह एक चक्रीय प्रक्रिया है, जिसका आरम्भ जल से हुआ है। यही 'क' पूरी घटना का आधार है। इसी 'क' से निराकार साकार रूप में प्रकट होते हैं। तान्त्रिक साहित्यों में विशेष रूप से मुण्डमाला तंत्र में 'क'कारादि काली शतनाम, महानिर्वाण तन्त्र में करारकूटघटितं कालिकाशतनामस्तोत्र,

'क'कारादि काली सहस्रनाम आदि 'क'कार स्तव प्राप्त होते हैं। इसलिए यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'क'कार देवी काली का स्पष्ट रूप में द्योतक है। महाकालसंहिता में उन्हें 'ककारवर्णनिलया' भी कहा गया है। इस 'क'कारात्मक काली नाम की पुस्तक कोई भोग-मोक्ष की साधना नहीं है। वस्तुत: यहाँ साधना के श्रेष्ठ गन्तव्य की ओर कवि का लक्ष्य है, क्योंकि उत्तम साधक के लिए भक्ति के आगे मोक्ष भी गौण है। हनुमानजी ने भी प्रभु श्रीराम से माँगा है –

नाथ भगति अति सुखदायनी।
देहु कृपा करि अनपायनी।।

अर्थात् पूर्ववर्ती पद में काली नाम के स्थान पर परमान्न व पिष्टक स्वरूप अन्य साधनाओं की गौणता ही निर्दिष्ट की गई है। यहाँ भी एक ही कथन है – काली के एक नाम से सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है। भोग-विलास से लेकर ब्रह्मपद तक, सब कुछ काली के 'क' में स्थित है – **'एवं संचिन्तयेत् कालीं धर्मकामार्थमोक्षदाम्।'** काली का दूसरा नाम अनिरुद्ध सरस्वती भी है। काली के साथ वैदिक सरस्वती नदी का सम्बन्ध जोड़कर ही वह अन्त:सलिला सरस्वती नदी के रूप में काली ककारात्मिका-कवित्व-शक्तिदायिनी हैं। महाकाल विरचित स्तोत्र में काली को 'गद्यपद्यमयीं वाणीं' प्रदान करनेवाली तथा 'प्रतिभाजयदायिनीं' कहा गया है।

होता हृदय वह भागीरथी तट,
जिसके हृदय में उदित होती काली।
वह जो काल होकर महाकाल होता,
समय के साथ बजाता हाथों से ताली।।

इस पद में उस नाम को हृदय में धारण करने की महिमा व्यक्त हुई है। किन्तु यह पद थोड़ा क्लिष्ट, बहुआयामी एवं योगपरक है। काली के नाम का जप करने पर अनाहत चक्र में गंगा रूपी नाड़ी में कल्लोल होता है। गंगा-यमुना-सरस्वती, क्रमश: इडा-पिंगला-सुषुम्ना नाड़ी की प्रतीक हैं। कुंडलिनी सुषुम्ना नाड़ी पथ के एक-एक चक्रों का भेदन करते हुए उर्ध्व दिशा में बढ़ती है। जब यह अनाहत चक्र में अवस्थित होती है, तब आनन्दवारि की वर्षा होती है। इसलिये अनाहत चक्र का दूसरा नाम त्रिवेणी संगम भी है। त्रिधारा अमृतस्राविणी नाड़ियाँ अनाहत चक्र में सम्मिलित होकर महातीर्थ बनाती हैं। इस महातीर्थ में स्नान करने से संसार में अन्य कोई बन्धन नहीं रहता। अत: हृदय का जाह्नवी क्षेत्र में परिणति एकमात्र काली नामक सुधारस द्वारा ही सम्भव है। इस पद का अन्तिम अंश प्राणायामपरक है। 'आली' अर्थात् नि:श्वास **(inhalation)**, 'काली' अर्थात् प्रश्वास **(exhalation)**। इस 'आली-काली' का प्रवाह ही काल है। हमलोगों के प्रति नि:श्वास और प्रश्वास की गति में समय का एक-एक मुहूर्त है। तभी तो यह नि:श्वास-प्रश्वासात्मक प्रवाह हृदय को आबद्ध करता है। अर्थात् कुम्भक करने पर जो महत् प्राणवायु की उत्पत्ति होती है, वही है महाकाल। इस पद से मिलता सुर रामप्रसाद की एक अन्य 'हृदयकमल रूपी मंच पर नाचे श्यामा' नामक रचना में भी मिलता है, जो ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव को भी बहुत प्रिय था। वहाँ कवि कहते हैं –

इड़ा-पिंगला नामक और सुषुम्ना जैसी मनोरमा।
इनके मध्य गुथी हुई है, ब्रह्मसनातनी माँ श्यामा।।

(मूल बंगला – इडा-पिंगला नामा, सुषुम्ना मनोरमा। तार मध्ये गाँथा श्यामा ब्रह्मसनातनी।।) अर्थात् बार-बार काली नाम जपने से इडा-पिंगला-सुषुम्ना नाड़ी रूपी मनोरम नदियों में मधुर श्यामा माँ का नाम कल्लोल कर प्रवाहित होने लगता है। इसीलिये सिद्धेश्वरी तन्त्र में भगवती को योगियों की इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना नाड़ियों में प्रवाहित होने की बात कहकर महेश्वर ने उनकी स्तुति की है – **'इडा पिंगला त्वं सुषुम्ना च नाड़ी, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे।''**

किन्तु काली के पाद-देश में स्थित महाकाल क्या हैं? – शव। साधक रामप्रसाद के एक अन्य श्यामा संगीत में हम पाते हैं –

विमाता के तट पर जाकर,
कुश से बना पुतला जलाऊँ।
अशौच के बाद पिण्डदान कर,
काल अशौच में काशी जाऊँ।।

विमाता का अर्थ है – गंगा। क्योंकि गंगा 'मात: शैलसुता-सपत्नी' हैं। शास्त्रों का वचन है कि काशी में मरने से संसार में पुन: आगमन नहीं होता। इस सत्यता की पुष्टि अपनी काशी यात्रा के समय अवतारवरिष्ठ भगवान श्रीरामकृष्ण स्वयं करते हैं। उनके शब्दों में ही – ''मैंने देखा कि पिंगलवर्ण जटाजूटधारी दीर्घाकार एक श्वेतकाय दिव्यपुरुष गम्भीर पद-ध्वनि के साथ श्मशान की प्रत्येक चिता के पास जा रहे हैं और प्रत्येक जीव को यत्नपर्वूक उठाकर उसके कान में तारक ब्रह्म मन्त्र दे रहे हैं। सर्वशक्तिमयी जगदम्बा भी स्वयं

महाकाली के रूप में जीव के दूसरी ओर उसी चिता पर बैठी उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के सभी संस्कारों का बन्धन खोल दे रही हैं तथा उसके निर्वाण का पथ उन्मोचित करती हुई उसे अखण्ड के राज्य में भेज रही हैं।''

किन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि कालभैरव की नगरी काशी में रामप्रसाद आत्मदाह की बात क्यों कर रहे हैं? वस्तुत: हृदयरूपी गंगा तट पर सुषुम्ना नाड़ी रूपी भागीरथी के किनारों पर संलग्न अनाहत चक्र ही मूलत: श्मशान है। उसी चक्र में स्वयं को दाह करके, काल-अशौच ग्रहण करके काशी यात्रा करना सहस्त्रार चक्र में गमन का प्रतीक है। रुद्रयामल तन्त्र में सहस्त्रार चक्र को ही शिवजी की राजधानी अर्थात् अविमुक्त काशी कहा गया है –

विद्युद्विलासवपुष: श्रियमुदवहन्तीं,
यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम्।
सौषुम्नवर्त्मकमलानि विकासयन्तीं,
देवीं भजे हृदि परामृतसिक्तगात्राम्।।

हमारे विवेच्य भजन 'वह जो काल होकर महाकाल होता, समय के साथ बजाता हाथों से ताली।' में भी यही आत्मदाह करके शिवसायुज्य होने की ही बात है। कुम्भक के माध्यम से भौतिक शरीर को अवशोषित व जलाकर, व्यक्ति महाकाल के रूप में अवस्थित हो सकता है। किन्तु इसके लिए व्यक्ति को अपनी काल सत्ता का विनाश करना होगा तथा उसके लिए जो अंगास्त्र-न्यास है, वह है – हाथों से ताली बजाना। तान्त्रिक पूजा में जब कराङ्गविन्यास किया जाता, उस समय अन्तिम में अंगास्त्र-न्यास के समय करताली प्रदान करने की प्रथा है। इसके द्वारा सर्वांगीण रक्षा निर्देशित होती है। इसी अस्त्र के द्वारा अपनी काल सत्ता अर्थात् नि:श्वास-प्रश्वासात्मक अपने प्राणमय देह का नाश करके महाकाल रूप में स्थित होकर गंगातट पर काशीश्वर होकर विलास किया जा सकता है। यह सब काली नाम की कृपा के द्वारा ही सम्भव है।

ज्ञानाग्नि अन्तर में जलती, दो धर्माधर्म की धृताहुति।
मन को करो बिल्वपत्र समिधा, यत्नपूर्वक स्रुव से आहुति।।

इसका अर्थ सहज ही बोधगम्य नहीं है। यहाँ काली नाम की साधना की विधि बतलायी गई है। इस काली नाम महात्म्य के लिए ज्ञानरूपी अग्नि को प्रज्जवलित कर अन्त:करण में धारण करना होगा। तन्त्रशास्त्र में भी कहा गया है –

अथाधारमये कुण्डे चिदग्नौ होमयेत्तत:।
आत्मान्तरात्मा परमज्ञानात्मा च प्रकीर्तित:।।

इस ज्ञानाग्नि में अपने धर्म और अधर्म दोनों की घृत की तरह आहुति देनी होगी। तान्त्रिक मानस पूजा में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है – **''धर्माधर्मौ साधकेन्द्रो हविस्त्वेन प्रकल्पयेत।''** उसमें बिल्वपत्र की समिधा होगी। अर्थात् बिल्वपत्र के त्रिदल, त्रिरिपु – काम, क्रोध व लोभ के प्रतीक हैं। किस प्रकार इस त्रिदलाकार त्रिरिपु की हम आहुति देंगे? यत्नपूर्वक अर्थात् योग के माध्यम से। अब प्रश्न उठता है कैसे योग की? इसका उत्तर भगवान शिव ने शाक्तागमों में बताया है –

नाभिचैतन्य रूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।।
वह्निजायान्तमन्त्रेण दद्याच्च प्रथमाहुतिम्।
धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णा-वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहं स्वाहा।।
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्व्यन्मनी-स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।।

रामप्रसाद के उक्त गानांश में वैदिक सूक्तों तथा तान्त्रिक अन्तर्योग का सम्मिश्रण है। अर्थात् धर्माधर्म को घृत रूपी हवि बनाकर, आत्मा रूपी अग्नि में, मन रूपी स्रुवा के द्वारा, सुषुम्ना रूपी हवन कुण्ड में नित्य अक्षवृत्ति अर्थात् समस्त कायिक-वाचिक-ज्ञाताज्ञात कर्मादि का हवन करना होगा। इसी भाव का सरलार्थ रामप्रसाद ने काली नाम के माध्यम से किया है।

प्रसाद कहते हैं हृदय-भूमि का,
विरोध मन से सम्पूर्ण मिटा।
मेरा यह तन हुआ दक्षिणा काली का,
ऐसे ही देवत्रय का ऋण मिटा।।

यह ब्रह्मानन्द का बोधक पद है। रामप्रसाद इस प्रकार काली नाम की महिमा व्यक्त करते हुए काली-नाम के साधना की व्याख्या करते हुए अन्त में कहते हैं कि इस प्रकार हृदय के सभी द्वंद्व – सुख-दुख, शान्ति-अशान्ति, धर्म और अधर्म, सब नष्ट हो जायेंगे। वेदान्ती भी ऐसा ही कहते हैं – **स: शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्य: विमुक्त: अमृत: भवति।।''** इस प्रकार सारे विरोध मिट जायेंगे और साधक स्वयं ही दक्षिणा काली बन जायेगा। अर्थात् रामप्रसाद स्वयं कालीत्व को प्राप्त हो गये हैं। ठीक उसी प्रकार हमलोग

भी काली नाम की तत्त्वत: साधना करके स्वयं काली बन जायेंगे। इसीलिये शक्तिसाधक कमलाकान्त का मन भ्रमर बन कर श्यामापद नीलकमल के भक्ति रूपी रस का आस्वादन करना चाहता है और वहाँ जाते ही काली के साथ एकाकार हो जाता – **''चरण कालो, भ्रमर कालो, कालोय कालो मिसे गेलो।''** इसके परिणामस्वरूप इस स्थूल शरीर का कोई भी ऋण नहीं रहेगा। देवत्रय अर्थात् ऋषिऋण, पितृऋण और देवऋण। मानव इन तीनों का ऋणी है। किन्तु काल-अकाल से परे दक्षिणा कालीत्व को प्राप्त कर लेने पर अब और कैसा ऋण? तब सारे ऋण पूर्ण हो जाते हैं और आप तब निरुत्तरा अनिरूद्धा सरस्वती, स्वयं काली, नाम, नामी व नामप्रेमी सब एकाकार हो जाते हैं।

रामप्रसाद का अब तक का सबसे जटिल किन्तु गहन चिन्तनीय श्यामा संगीत मुझे यही लगा। वस्तुत: देवी की बाह्य पूजा में भी पूजा का अधिकारी कौन है? महामाया की पूजा कौन कर सकता है? शास्त्र बाताते हैं कि देवी होकर ही देवी की पूजा की जा सकती – ''देवी भूत्वा, देवीं यजेत्'' और मुण्डकोपनिषद् में तो यही कहा गया है कि ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है – **ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।** ○○○

कविता

काली काली मैं भजता हूँ

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

काली-काली मैं भजता हूँ, माँ अब तक तुम नहीं उदार ।
मेरे अँधियारे जीवन में, नहिं विभास का है आसार ।।
अन्तर्रिपुओं की सेना माँ, मुझ पर करती बहुत प्रहार ।
दीन-हीन मैं पड़ा हुआ हूँ, नहिं मेरा कोई अभिसार ।।
माँ तुम मंगलमय कल्याणी, कृपा तुम्हारी अपरम्पार ।
दया करो माँ मुझ दुर्बल पर, दे दो अपना स्नेहाधार ।।
जगत-जननि माँ पुत्र-वत्सला, कर दो अन्तर्रिपुसंहार ।
तेरी पुन्य कृपा को पाकर, हो जाऊँ भवसागर पार ।।

कामाख्यासूक्तम्

(छन्द - गायत्री)

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

क्लीं कामाख्यां भजामहे कामरूपनिवासिनीम्।
मदिष्टं यत् करोतु सा।।१।।

– हम कामरूप में निवास करनेवाली, क्लीं बीजात्मक माँ कामाख्या को भजते हैं। वही माँ मेरा अभिष्ट सिद्ध करे।

यदेच्छं फलदात्री त्वं कामाख्ये योनिविग्रहे।
भक्ति मुक्तिं प्रयच्छ मे।।२।।

– हे योनिविग्रहवती कामाख्या माँ ! तुम इच्छानुसार फल प्रदान करनेवाली हो। तुम मुझे भक्ति और मुक्ति प्रदान करो।

कामात्मिके न जानामि कञ्चिदन्यं हितैषिणम्।
प्रतिब्रूहि हिताय मे।।३।।

– हे कामरूपिणी माँ ! मैं किसी अन्य हितैषी को नहीं जानता। इसलिये तुम मेरे हित के सम्बन्ध में उत्तर दो।

सर्वदेवार्चिते देवि ! सर्वतन्त्राधिकारिणि।
तन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे।।४।।

– सभी देवाताओं द्वारा पूजित और समस्त तन्त्रों की अधिकारिणी हे देवि माँ ! मेरी तन्त्र साधना सफल करो।

एतत्पुत्राय भजते कामाख्ये ! कृपयात्मानम्।
सौम्य रूपं प्रदर्शय।।५।।

– हे माँ कामाख्या ! उपासना करते हुये इस पुत्र को कृपा कर अपने सौम्य रूप को दिखा दो।

श्रीरामकृष्ण-गीता (२८)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

चिल्लः कश्चिन्मुखेमीनः डीयमानो विहायसा।
दृष्टापश्चादधावस्तं शतं तं चिल्लवायसाः।।१२।।

– एक चील एक मछली को मुँह में लेकर आकाश में उड़ रही है। उसे देखकर सैकड़ों चील-पक्षी उसके पीछा करने लगे।

सर्वे तमर्दयन्तोऽथ तुण्डघातैश्च दंशने।
अचेष्टन्त तमाच्छेत्तुं मीनं ते प्रसभं भृशम्।।१३।।

– वे सभी उसे अपनी चोंच से मार-काटकर उससे मछली छीनने का प्रयास करने लगे।

यत्र यत्र ह्ययं याति तत्र ते चिल्लवायसाः।
सर्वं खलु धावन्ति तत्पश्चादपि लोलुपाः।।१४।।

– वह जहाँ भी जा रही है, वहीं सब लोभी कौए और चील शोर मचाते हुये उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे।

शेषे सन् स उत्त्यक्तस्त्यक्तवान् मीनखण्डकम्।
तद्धृतं यावदाच्छिन्नं चिल्लेनेकेन चाञ्जसा।।१५।।
तमुत्सृज्य दधावुस्ते तं द्वितीयं ह्यतःपरम्।
निश्चितः प्रथमस्तुष्णीमासीद् वृक्षे ततः सुखम्।।१६।।

– अन्त में उस चील ने खिन्न होकर मछली छोड़ दी। जैसे ही उसे एक दूसरी चील ने ले लिया, वैसे ही सभी कौए और चील पहली वाली चील को छोड़कर दूसरी चील के पीछे दौड़ने लगे। उसके बाद पहलीवाली चील निश्चिन्त होकर एक वृक्ष की डाली पर जाकर बैठ गयी।

अवधूतः समीक्ष्येदं तं नत्वाह निरङ्कुशम्।
महद्भयं हि संसारे शान्तिस्तूपाधिवर्जिते।।१७।।

– अवधूत ने उस चील की संकटहीन निश्चिन्त अवस्था को देखकर प्रणाम करके कहा – 'इस संसार में उपाधि का त्याग कर देने में शान्ति है, नहीं तो बड़ा संकट है।

(क्रमशः)

पृष्ठ ५७५ का शेष भाग

भगवान अर्जुन को बताते हैं कि ज्ञान का मार्ग बड़ा स्वाधीन मार्ग है। भक्त तो भगवान के सहारे आगे बढ़ता है, ज्ञानी किसी का सहारा नहीं लेता, वह अकेला चलता जानते हो, जो अकेला चलता है, उसमें भी तो देहबोध बना रहता है। जब तक देह के अस्तित्व को वह अनुभव करता रहता है, तब तक अव्यक्त की साधना बड़ी कठिन है, क्योंकि देहबोध के रहते अव्यक्त का चिन्तन ठीक ढंग से नहीं होता। जैसा हमारा **त्वम्** होता है, उसी के अनुसार **तत्** दिखाई देता है। वह परमात्मा दिखाई देता है। **त्वम्** का शोधन करो, तो उसी प्रकार सत्यस्वरूप में भी हमारे समक्ष शोधन उत्पन्न होगा। यह जो **त्वम्** है, मनुष्य का जो जीवत्व है, हमारा जो मन है, वह आकर परमात्मा के ऊपर पर्दे के समान छा गया है। जैसे कि जब आईने के ऊपर धूल की मोटी परत जम जाती है, तब जैसे-जैसे हम उस धूल को पोंछते जाते हैं, आवरण जैसे-जैसे झीना होता जाता है, वैसे-वैसे आईने में प्रतिबिम्ब झलकने लगता है और धूल के पूरी तरह साफ हो जाने पर वह प्रतिबिम्ब पूरी तरह से दिखाई देने लगता है।

इसी प्रकार, जब हम तत् का शोधन करते हैं, तब धीरे-धीरे तत् का असली रूप हमारे समक्ष प्रतिभासित होता जाता है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३२)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

इस पत्र के प्राप्तकर्ता एक सुप्रसिद्ध उच्च विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। छात्रों को किस प्रकार गठित करना सम्भव हो सकता है, इसका कुछ दिशा-निर्देश इसमें है। किन्तु महाराज का शरीर मानो पिण्डवत् है।

श्रीरामकृष्ण:

वाराणसी

५-९-१९६५

प्रिय विष्णु चैतन्य,

तुम्हारा कुशल समाचार पाकर आनन्दित हुआ। मैं बहुत अस्वस्थ हूँ, इसलिए तत्काल तुम्हें पत्र नहीं लिख सका, कुछ विलम्ब हो गया, तुम इसका कुछ बुरा मत मानना। मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में मैं तुम्हें २-३ बातें बताता हूँ, आशा है तुम इसे ध्यान से सुनोगे।

पढ़ने-लिखने का दो उद्देश्य है – इस जीवन में सुख और आराम से रहने के प्रयास को साधारण लोग शिक्षा का उद्देश्य समझते हैं। ''पढ़ाई-लिखाई करे जो। गाड़ी-घोड़ा चढ़े जो।'' यह शिक्षा का अति स्थूल दृष्टिकोण है। इसका एक और भी दृष्टिकोण है –

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद् धर्मं तत: सुखम्।।

किन्तु शिक्षा का मूल उद्देश्य है – आत्मविकास। भूगोल पढ़ने से ज्ञात होता है कि भूमण्डल में सर्वत्र मनुष्य रहते हैं और प्रत्येक व्यक्ति इस विराट मानव समाज का एक अंश मात्र है। जहाँ-कहीं भी जितने लोग हैं, सभी एक मानव-समाज के अन्तर्गत हैं। जितने भी बाहरी कारणों से मनुष्य का मनुष्य से पृथक्ता-बोध होता है, वह आत्मविकास का अतीव स्थूल अंश है। मानवीय मनोविज्ञान या मन:सरंचना सर्वत्र बिल्कुल एक ही तरह की है। जीवविज्ञान पढ़ने से ज्ञात होता है कि मनुष्य या पेड़-पौधे, जहाँ कहीं भी जीवन है, सबका जीवन प्राणशक्ति की एक-एक प्रकार की क्रिया है।

इस दृष्टि से जीवन-मरणशील, सभी वस्तुयें एक जाति की हैं।

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत:।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभि:।।

साधन-भजन करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना मनुष्य के लिए लगभग असम्भव है। 'मनुष्याणां सहस्त्रेषु' इत्यादि। किन्तु उपयुक्त निर्देश प्राप्त करके मनुष्य वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में तुमसे पहले बहुत-सी बातें हो चुकी हैं। आज मृत्यु-शय्या पर आकर तुमसे यथासम्भव कुछ बातें कही हैं। तुम शिक्षक के कार्य हेतु संकल्पबद्ध हुए हो, ये सब बातें तुम्हें ज्ञात हो जाने पर बच्चों का सर्वांगीण कल्याण होने की सम्भावना है। अपना कुशल-समाचार देना। मेरी स्नेहिल शुभेच्छा स्वीकार करो।

इति

शुभाकांक्षी

प्रेमेशानन्द

सायंकाल ६ बजे हैं। अक्षय चैतन्य महाराज आए हैं, विनय बाबू के पास रह रहे हैं।

महाराज – अरे, तुम कहाँ रुके हो, क्या खा रहे हो, स्वास्थ्य कैसा है? तुम्हारा पूर्वाश्रम का क्या नाम था?

अक्षय चैतन्य – रमेश।

महाराज – तुमने तो गणना की थी। मैं कब मरूँगा?

अक्षय चैतन्य – गणना में तो २-३ वर्ष के बीच योग है। किन्तु काशी में तो १० गुना फल होता है। उसी तरह भोग का क्षय भी १० गुना निश्चित ही है। इसीलिए यह जल्दी-जल्दी भी हो सकता है। क्या आप की जाने की तीव्र इच्छा है?

महाराज – हाँ, प्रबल इच्छा है।

अक्षय चैतन्य – रहने की थोड़ी भी इच्छा नहीं है?

महाराज – हाँ, थोड़ी भी इच्छा नहीं है।

अक्षय चैतन्य – जब आपके मन में ऐसी इच्छा उठ रही है, तो शीघ्र ही जाएँगे।

तदुपरान्त दोनों प्रस्थान कर गए।

२३-११-१९६५

आज सूर्यग्रहण है। सुबह महाराज को भ्रमण हेतु ले जाया गया। अस्पताल के कर्मी सुनील एक एक्स-रे प्लेट लेकर आए। उसके माध्यम से महाराज, संतोष और सेवक ने ग्रहण देखा। चारों ओर हल्की सूर्यरश्मियाँ थीं।

महाराज – ग्रहण के सम्बन्ध में यदि तुम शान्त भाव से सुन सको, तो एक बात तुमसे कहूँगा। घर में वैष्णवों की गुरुपीठ थी। ग्रहण लगा था, ठीक अशौचावस्था की तरह कोई काम नहीं, सब कुछ साफ-सुथरा, नए रूप में कोई प्रयोग होना था। उस समय जो किया जाएगा, उसका १० गुना फल मिलेगा। इसीलिए मल-त्याग, पेशाब करना या खाना-पीना बन्द था। केवल भगवान का जप, ध्यान, पूजा, पाठ हो सकता था। जल पीना आदि भी निषिद्ध था, केवल पूजा हेतु जल का उपयोग विहित था। एक वृद्ध दौड़-दौड़ते आए। गुरु के घर का सरोवर प्रत्यक्ष गंगा तुल्य था। वे स्नान करके भीगे कपड़े में ही जप करने लगे। घर में शिष्य-सेवक गण ठसाठस भर थे, वह समय एक महोत्सव जैसा ही तो था।

मैं ग्रहण-काल में एक कमरे में लेटकर चुपचाप भगवन्नाम जप कर रहा था।

२४-११-१९६५

कई दिनों से सेवक स्वयं को असहाय-अनुभव कर रहे हैं। महाराज आँखों से ठीक से नहीं देख पाते। किसी तरह कानों के पास मुँह करके कहने से उन्हें कुछ समझाया जा सकता है। दो-तीन दिनों से महाराज कान से कुछ सुन नहीं पा रहे हैं। अब परस्पर संवाद का आदान-प्रदान कैसे होगा? तब चिकित्सक की शरण में जाना पड़ा।

आज प्रात: डॉ. दासगुप्त को कान दिखाया गया। उन्होंने महाराज के कानों की सफाई की। इससे श्रवण शक्ति अधिकांशत: वापस आ गई। इससे महाराज भी थोड़े प्रसन्न हैं। प्रात:काल भ्रमण करते हुए महाराज बोले, ''संतोष (सेवक के सहयोगी) को कहता हूँ कि मैं जितने दिन हूँ, उतने दिनों तक तुम्हें रहना होगा, अन्यत्र नहीं जाना। संतोष ने भी कहा है कि वह रहेगा, मुझे छोड़कर नहीं जाएगा।

मैंने कहा था – देखते तो हो न ! तुम्हारे नहीं रहने पर मुझे कितना कष्ट होगा। इस पर संतोष ने कहा है कि आप एक प्रबन्ध कर दीजिएगा, जिससे कि आपके देहान्त के बाद मैं ठाकुर के आश्रम में किसी अच्छे कार्य में लगा रह सकूँ।

२६-११-१९६५

सेवक – आपने माँ को किस तरह देखा है या देखते हैं – बैठे हुए या पैर फैलाए हुए?

महाराज – अधिकांशत: पैर फैलाए हुए देखा है, कभी-कभी पैर मोड़कर बैठे हुए भी देखा है।

२७-११-१९६५

सेवक – ठाकुर को भोग लगाया जा सकता है?

महाराज – हाँ, हम भोग दे सकते हैं। हमारी तो गौण भक्ति नहीं, अपितु रागभक्ति है। ठाकुर हमारे माता-पिता सब कुछ हैं। जो खाता हूँ, ठाकुर को अपना निकटतम समझकर, अर्पित करके खाता हूँ।

सेवक – (हँसते हुए) आप भी तो ठाकुर को निवेदन करके खाते हैं, तो फिर ठाकुर मंदिर का प्रसाद लाने हेतु क्यों भेजते हैं?

महाराज – यह एक साधना है, भक्ति मार्ग में भजन-पूजन, भोगराग सब कुछ है न? देखो न, प्रसाद समझकर सिर झुकाकर पहले जीभ पर रखकर देख लेता हूँ, यह भी भक्ति की एक साधना है।

दोपहर में निद्रा से उठकर महाराज ने पानी पीया। एक पत्र पढ़कर सुनाया गया।

महाराज – मैं तो ऐसा पत्र नहीं लिख पाऊँगा।

सेवक – (हँसकर), यही तो, इतनी विद्या कैसे होगी?

महाराज – सचमुच, जब गीत–कविता पढ़ता है, तो उसे सुनकर मैं अवाक् रह जाता हूँ।

सेवक – इस समय आपका कौन-कौन 'मैं' है? कवि?

महाराज – नहीं।

सेवक – साहित्यकार? लेखक?

महाराज – नहीं।

सेवक – संन्यासी?

महाराज – नहीं।

सेवक – रोगी, वृद्ध?

महाराज – हाँ।

सेवक – माँ के बच्चे?

महाराज – हाँ।

यद्यपि यह बहुत पहले की घटना है, तथापि सारगाछी आश्रम के प्रसंग-क्रम में यहाँ संकलित कर रहा हूँ। पूजनीय स्वामी विरजात्मानन्द की बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। काशी में उनके साथ रहते समय उनके मुख से स्वामी विरजानन्द महाराज की यह घटना सुनी है।

एक दिन रात में स्वामी विरजानन्द जी बिस्तर पर सोने गए। उनका सेवक मच्छरदानी लगाकर, बिस्तर को ठीकठाक करके, प्रकाश बन्द करके जाने ही वाला था कि अचानक स्वामी विरजानन्द जी बोले, ''अरे ! अन्दर एक मच्छर रह गया है।'' सेवक शीघ्र ही प्रकाश जलाकर, मच्छर को इधर से उधर भगाने लगा। संघगुरु का बिस्तर है, उस पर चढ़ भी नहीं सकता, क्या करें, समझ भी नहीं पा रहा है। काफी देर तक सेवक की कसरत को देखने के बाद महाराज ने उससे कहा, ''जाओ, तुम अनादि को बुला लाओ।' अनादि महाराज के आते ही महाराज बोले – ''नादि (महाराज उन्हें ऐसा ही बुलाते-पुकारते थे) उस मच्छर को निकालो।'' अनादि महाराज ने मच्छरदानी उठाकर, बिस्तर पर चढ़कर, उस मच्छर को हाथों से मारकर, महाराज को एक बार प्रणाम कर पुन: मच्छरदानी लगाकर चले गए। महाराज सेवक से बोले, ''देखा, मर्यादा-पालन की अपेक्षा स्नेहपूर्वक आचरण करोड़ों गुना सुखकर है।''

पूजनीय स्वामी हितानन्द और स्वामी सुलभानन्द १९६० ई. के आस-पास मठ से सारगाछी आश्रम आए थे। उद्देश्य था – प्रेमेश महाराज को दर्शन-प्रणाम करना। उन लोगों के द्वारा महाराज को प्रणाम करने जाते समय महाराज उनलोगों के हाथ को पकड़कर अपने सिर पर रखकर बोले, ''आप लोग इन हाथों से प्रभु का नित्य स्पर्श करते हैं, ये हाथ कितने पवित्र हैं !'' उनके प्रयत्न करने पर भी महाराज ने उन्हें अपने चरणों में प्रणाम नहीं करने दिया।

३०-११-१९६५

सुबह ६.३० बजे, महाराज नाश्ता करने के लिए बैठे।

महाराज – और कब तक बैठना होगा। अब तो चला जाना ही ठीक है।

सेवक – मुझे भी साथ ले चलिएगा।

महाराज – तब तो बहुत अच्छा है।

सेवक – इस कम आयु में मरने में भी दुख नहीं है।

महाराज – तुम्हारे बूढ़े माता-पिता हैं, सुनकर कष्ट पाएँगे।

दोपहर ११.३० बजे। भोजन हो गया। महाराज हाथ धो रहे हैं।

ताराप्रसन्न महाराज कक्ष में आए।

ताराप्रसन्न महाराज – अरे, भोजन हो गया। सोचा था, आपका भोजन-दर्शन करूँगा, प्रसाद लूँगा, कितना और क्या खाते हैं, सब देखूँगा।

महाराज – प्रतिदिन जो खाता हूँ, वही। हाँ, आज एक मजेदार चीज थी – आँवले के कई मुरब्बे खाने को मिले थे।

ताराप्रसन्न महाराज – अरे, यह तो खाने में कड़ा रहा होगा।

महाराज – मछली का सिर जैसा था।

ताराप्रसन्न महाराज – कितना बड़ा सिर?

महाराज – (उंगलियों से दिखाकर) इतना बड़ा (उंगलियों के बीच ९ इंच अन्तर था)

ताराप्रसन्न महाराज – इतना ही।

महाराज – मेरे लिए इतना ही बड़ा है।

१-१२-१९६५

रात ८.३० बजे। महाराज चुपचाप बैठे हैं।

सेवक – महाराज, जल्दी बताइए तो, इस समय क्या सोच रहे हैं।

महाराज – ऐसे ही बैठा हूँ।

सेवक – ऐसे ही?

महाराज – सोच रहा हूँ कि श्रीरामकृष्ण सर्वव्यापी हैं।

(क्रमश:)

रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

(गतांक से आगे)

इस पूजा-गृह (पुराना मन्दिर) में लगातार चालीस वर्ष ठाकुर की नित्यपूजा और विशेषपूजा होती रही। श्रीरामकृष्ण मन्दिर के लिये स्वामीजी ने स्वामी विज्ञानानन्द को अपने विचार समझाकर तदनुरूप रेखाचित्र बनवा लाने को कहा था। उस समय के सरकारी शिल्पकार श्रीगाइथर से वे तीन रेखाचित्र बनवा कर लाये थे, जिसमें से स्वामीजी ने एक को स्वीकृत किया था। पूजागृह में रखी ठाकुर की भस्मास्थि की मंजूषा को स्वामी विज्ञानानन्द ने श्रीरामकृष्ण-मन्दिर में १४ जनवरी, १९३८ ई. को स्थापित किया था, तब से यहीं ठाकुर-पूजा की जा रही है और ठाकुर पूजाकक्ष को 'पुराना मन्दिर' कहा जाने लगा। स्वामी विवेकानन्द ने मठ में श्रीरामकृष्ण की जीवन्त उपस्थिति का प्रमाण दिया है। एक दिन उनकी इच्छा हुई कि ठाकुर की जीवन्त उपस्थिति की जाँच करें। उन्होंने मन ही मन में प्रार्थना की, "ठाकुर, तुम यदि यहाँ सत्य ही विराजित हो, तो तीन दिन के भीतर ग्वालियर के महाराज को आकर्षित करके लाओ। इसके दूसरे दिन स्वामीजी किसी कार्यवश कलकत्ता गये थे। ग्वालियर के महाराजा उस समय कलकत्ता में थे। उन्होंने बेलूड़ मठ आने की सोची नहीं थी। परन्तु ग्रांड-ट्रंक रोड से गाड़ी से जाते समय मठ के निकट आकर उन्होंने अपने भाई को यह पता लगाने के लिये भेजा कि स्वामीजी इस समय मठ में उपस्थित हैं या नहीं? स्वामीजी मठ में नहीं हैं, यह जानकर वे चले गये। स्वामीजी ने कलकत्ता से लौटकर जब यह सूचना सुनी, तो चौंक उठे। तभी तेजी से ठाकुर-मंदिर में जाकर भस्मास्थि की मंजूषा को सिर से स्पर्श कर कहने लगे – "ठाकुर, तुम सत्य हो, तुम सत्य हो, तुम सत्य हो, तुम सत्य हो।" यह पूजागृह अपने स्मृतिकक्ष में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं को समेटे हुए है। स्वामीजी के शिष्य शरतचन्द्र चक्रवतर्ती के उद्‌बोधन में प्रकाशित एक लेख से ज्ञात होता है कि कहीं ठाकुर के नाम से नया सम्प्रद्राय आरम्भ न हो जाये, यह सोचकर स्वामीजी ने मठ में ठाकुर के आसन पर ठाकुर का चित्र रखकर पूजा नहीं करने दिया। आरम्भिक दिनों में एक रेशमी कपड़े पर अंकित 'ओंकार' टाँगकर उसकी पूजा होती थी। परन्तु एक रात्रि में हुए अनुभूति के बाद स्वामीजी ने ही स्वयं आसन पर ठाकुर का चित्र रख दिया था। इस पूजागृह में स्वामी प्रेमानन्द या स्वामी सुबोधानन्द पूजा करते थे। कभी-कभी स्वामी सारदानन्द, स्वामी धीरानन्द, ब्रह्मचारी ज्ञान और स्वामीजी ने भी पूजा की थी।" प्राप्त तथ्यों से अनुमान किया जा सकता है कि ठाकुर पूजाकक्ष में 'ॐ ह्रीं ऋतं...' स्तव का गायन प्रतिदिन सन्ध्या आरती के समय

१९०४ ई. में आरम्भ हुआ था। श्रीमाँ की महासमाधि के पश्चात् उनका चित्र ठाकुर के आसन की बाँयीं ओर स्थापित किया गया था और उस समय से आरात्रिक गान के बाद देवीप्रणाम 'सर्वमंङ्गलमाङ्गल्ये'...' गाया जाने लगा था।

श्रीरामकृष्ण-जन्मोत्सव बेलूड़ मठ के प्रांगण में पहली बार १८९९ ई. में आयोजित किया गया था। १३ मार्च जन्मतिथि तथा रविवार १९ मार्च को सार्वजनिक महोत्सव धूमधाम से मनाया गया था। १९ मार्च के महोत्सव की विशेषता थी, स्वामीजी की उपस्थिति और उनकी उपस्थिति में भगिनी निवेदिता का भाषण। १९०० ई. में जन्मतिथि तथा परवर्ती रविवार का महोत्सव क्रमश: २० और २८ मार्च को मनाया गया था। लगभग डेढ़ सौ भजन गानेवाली मण्डलियाँ अपनी-अपनी ओर से कार्यक्रम प्रस्तुत करने आयी थीं। कम-से-कम पचीस सहस्र लोगों का आगमन हुआ था। १९०२ ई. में ठाकुर की जन्मतिथि बुधवार १२ मार्च को मनायी गयी थी एवं महोत्सव रविवार १६ मार्च को मनाया गया था, जिसके प्रधान आकर्षण थे स्वामी विवेकानन्द और ठाकुर के शिष्यगण। शनिवार ९ जनवरी, १९०४ ई. को स्वामीजी का जन्मोत्सव मठ में आयोजित हुआ था। प्रात: गुरुपूजा और रात्रि में काली पूजा की गई थी। रविवार १० जनवरी को विभिन्न कार्यक्रमों में मुख्य थे – पंडित मोक्षदाचरण सामाध्यायी द्वारा वेदपाठ एवं स्वामी शुद्धानन्द द्वारा उपनिषद पाठ और व्याख्या। मध्याह्न में भगिनी निवेदिता के व्याख्यान ने युवकों में अपने दायित्व के प्रति चेतना जगायी। उत्सव-स्थल को स्वामीजी के चित्र तथा उन चित्रों के नीचे लिखे उनकी वाणी से सजाया गया था। इस दिन लोगों को भोग-प्रसाद खिलाने में विवेकानन्द सोसाइटी के सदस्य तथा विवेकानन्द स्मृति-मन्दिर के छात्रों ने विशेष भूमिका निभाई थी।

१९०५ ई. में २७ जनवरी को पिछले वर्ष की भाँति स्वामीजी की जन्मतिथि समारोह का आयोजन हुआ था। रविवार ५ फरवरी को कलकत्ता की विवेकानन्द सोसाइटी ने एक जनसभा आयोजित की थी, जिसके सभापति स्वामी सारदानन्द थे तथा विशेष अतिथि के रूप में वैज्ञानिक श्रीजगदीशचन्द्र वसु और कवि श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर उपस्थित थे। इस वर्ष ठाकुर की जन्मतिथि बुधवार ९ मार्च को मनायी गयी थी। रविवार १८ मार्च को महोत्सव मठ के बृहद् प्रांगण में आयोजित किया गया था। ठाकुर और स्वामीजी के चित्र मंच पर सजाये गये थे। इस उत्सव में स्वामी सारदानन्द ने सभापति के रूप में स्वरचित निबंध 'श्रीश्रीरामकृष्णजीवन लोचन' पाठ किया था। आलमबाजार मठ में स्वामी योगानन्द द्वारा श्रीमाँ की जन्मतिथि के अवसर पर विशेषपूजा हवन, घनिष्ठ भक्तों में प्रसाद-वितरण आदि आरम्भ किया गया था। यह परवर्ती काल में बेलूड़ मठ में भी आयोजित की जाने लगी थी। क्रम से श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, श्रीबुद्धदेव, श्रीचैतन्य और ईसामसीह की आविर्भाव-तिथि भी वार्षिक कार्यक्रमों की तालिका में जुड़ गई थी। बंगाल में श्रीदुर्गापूजा विशेष धूमधाम से मनाई जाती है। स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी ब्रह्मानन्द को दुर्गापूजा के बारे में माँ दुर्गा के आगमन की जो अनुभूति हुई थी, उसके आधार पर जब यह निश्चय किया गया कि मठ में दुर्गापूजा का उत्सव मनाया जायेगा, तो सभी बड़े आनन्दित हुए थे। इस महोत्सव का शुभारम्भ १९०१ ई. में हुआ था। नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यानभवन में श्रीमाँ एवं महिला भक्तों के रुकने की व्यवस्था हुई थी।

श्रीमाँ के नाम से ही पूजा का संकल्प किया गया था, उनकी उपस्थिति से मठवासियों के मन में उत्साह व आनन्द की मानो सीमा न रही। ब्रह्मचारी कृष्णलाल पुजारी और श्री ईश्वरचन्द्र चक्रवर्ती तन्त्रधारक थे। स्वामीजी ने श्रीमाँ के करकमलों से तन्त्रधारक ईश्वरचन्द्र चक्रवर्ती को पचीस रुपये दक्षिणा दिलवायी थी। पूजा के दिनों में स्वामीजी को ज्वर था, परन्तु नवमी के दिन ज्वर कम होने पर उन्होंने दुर्गामण्डप में जाकर कुछ भजन गाये थे। सुयोग्य पुजारी एवं तन्त्रधारक द्वारा विधिवत् पूजा, हवन आदि सम्पन्न करना, साथ ही

श्रीमाँ की उपस्थिति (जिन्हें स्वामीजी ने 'जीवन्त दुर्गा' की संज्ञा दी थी) स्वामीजी अपने गुरुभाइयों और अन्य त्यागी संन्यासीगण सहित पूजा के तत्त्वावधान में नियुक्त, सहस्त्रों लोगों द्वारा प्रसाद ग्रहण, इन सभी कारणों से यह दुर्गापूजा अतुलनीय तथा सर्वदा अविस्मरणीय रहेगी। इस विधिवत् दुर्गोत्सव आयोजन के पश्चात् निकटवर्ती स्थानों के लोगों में मठ के बारे में किसी प्रकार की भ्रान्त धारणा नहीं रही। बंगाल में प्रचलित प्रथा के अनुसार इसके बाद पूर्णिमा के दिन श्रीलक्ष्मी पूजा और अमावस्या की रात्रि (दीपावली) को श्रीकाली पूजा भी की गई थी।

इसी क्रम में अग्रसर होते हुए 'मठ की नियमावली' के बारे में पाठकों को अवगत कराना होगा। आलमबाजार मठ में स्वामीजी रामकृष्ण संघ के विकसित होने की गति को देखते हुए सुचारु रूप से प्रबन्धन-कार्य करने हेतु तथा संघ के सदस्यों के व्यक्तिगत आध्यात्मिक जीवन को सम्यक् प्रशिक्षण के द्वारा परिमार्जित करने के लिये नियमावली की आवश्यकता अनुभव करने लगे थे। अत: आलमबाजार मठ में मठ को लोकतान्त्रिक ढंग से चलाने के लिये नियम बनाये थे, साथ ही अनुशासित जीवन, आध्यात्मिक साधना, स्वच्छता के संस्कार, वरिष्ठता को सम्मान देना, शान्त और मिल-जुल कर जीवन जीने की शैली के प्रति लगाव, इन पर भी बल दिया गया था। तत्पश्चात् नीलाम्बर मुखर्जी उद्यानभवन में मठ स्थानान्तरित होने पर स्वामीजी के द्वारा बोले गये नियमों को स्वामी शुद्धानन्द ने लिखा था। ये नियम ही 'श्रीरामकृष्ण मठ की नियमावली' के नाम से जाने जाते हैं। इसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

(१) इस मठ को स्थापित करने का उद्देश्य भगवान श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों के अनुसार व्यक्तिगत मुक्ति एवं संसार के हित के लिये स्वयं को प्रशिक्षित करना है। नारियों के लिये भी ऐसा ही मठ स्थापित किया जायेगा।

(२) नारियों का मठ पुरुषों के मठ के सिद्धान्तों के अनुसार ही संचालित होगा। नारियों के मठ से पुरुषों का कोई सम्बन्ध नहीं होगा, वैसे ही पुरुषों के मठ से नारियों का कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

(३) ऐसे मठ विश्व भर में खोले जायेंगे। कुछ देशों में केवल आध्यात्मिकता की आवश्यकता है, अन्य में लोगों को सुख के साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति एवं देश की आवश्यकतानुसार नेतृत्व करते हुए उन्हें आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर ले जाना होगा।

(४) विद्या के अभाव में धर्म-सम्प्रदाय का पतन हो जाता है। अतएव सर्वदा विद्या-चर्चा करनी होगी।

(५) त्याग एवं तपस्या के अभाव में विलासिता सम्प्रदाय को ग्रसित कर लेती है, अतएव त्याग एवं तपस्या का भाव सर्वदा उज्ज्वल बनाये रखना होगा।

(६) प्रचार कार्य द्वारा सम्प्रदाय की शक्ति बलवती रहती है, अतएव प्रचार कार्य कभी भी नहीं रोकना होगा।

(७) भारतवर्ष में प्रथम और प्रधान कर्तव्य जनसाधारण में विद्या और धर्म की शिक्षा प्रदान करना। क्षुधार्त के लिये अन्न की व्यवस्था किये बिना धर्म असम्भव है, अत: क्षुधार्त के लिये सदा भोजन की व्यवस्था हेतु उपाय बताना होगा।

(८) समाज-सुधार के विषय में मठ विशेष ध्यान नहीं देगा, क्योंकि सामाजिक दोष या कुरीति समाजरूप शरीर की व्याधि-विशेष है, अत: समाज शिक्षित और सबल होने पर कुरीतियाँ स्वत: ही चली जायेंगी। अतएव मठ का उद्देश्य समाजरूपी शरीर को शिक्षित और सबल बनाना है।

(९) चरित्र की शक्ति, आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास, शिष्य का गुरु में विश्वास, तद्वत् गुरु का शिष्य के प्रति विश्वास, स्वयं निर्णय लेने का गुण, यदि ऐसा सम्भव न हो सके, तो सर्वसम्मति से लेने का स्वभाव और मठ में संन्यास जीवन हेतु आवश्यक योग्यता, इन विषयों के नियम भी युक्त हुए। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारियों तथा संन्यासियों को दो श्रेणी में रखा गया।

(१०) चूँकि भारतवर्ष में धर्म के माध्यम से ही प्रत्येक कार्य करना होता है, अत: आर्थिक उन्नति, विद्या प्रदान, समाज-सुधार आदि सनातन धर्म-पथ का अवलम्बन करके ही करना होगा।

(११) ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म की पराकाष्ठा की समष्टिस्वरूप श्रीरामकृष्ण देव के व्यक्तित्व, जीवन एवं उपदेशों का अनुसरण कर जो स्वयं अपना चरित्र निर्माण करेगा, वही श्रीरामकृष्ण देव का यथार्थ अनुगामी है।

मुख्यत: इन नियमों का अनुशीलन करना मठ के सदस्यों और श्रीरामकृष्ण देव के भक्तों का कर्तव्य है। **''यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते'' (गीता, ३/२१)** – भगवान की इस

वाणी को स्मरण रखकर हमें विश्वकल्याण के लिये जीवन पथ पर अग्रसर होना है।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के मूलभूत अवयवों को सुव्यवस्थित रूप से कर्मरत करके स्वामीजी श्रीरामकृष्ण देव के सन्देश को प्रतीक रूप में चित्रांकित करने में संलग्न हो गये। स्वामीजी का उद्देश्य था कि यह प्रतीक संघ के सदस्यों को श्रीरामकृष्ण देव द्वारा प्रतिपादित प्राप्तव्य लक्ष्य का सर्वदा स्मरण कराता रहेगा। २४ जुलाई, १९०० ई. जोसेफिन मैकलाउड को लिखे पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामीजी ने उस समय अमेरिका में निश्चित कर लिया था कि मोनोग्राम कैसा होगा। इसके बारे में ५ जुलाई, १९०१ ई. को मेरी हेल को स्वामीजी पत्र में लिखते हैं – ''मिशन के सील में – सर्प 'योग', सूर्य 'ज्ञान', तरंगायित जल 'कर्म', पद्म 'भक्ति', इन सबके मध्य हंस 'आत्मा' – का प्रतीक दर्शाता है।'' अर्थात्, अनुमान कर सकते हैं कि मोनोग्राम इसी अवधि में तैयार हो गया था। १९०९ ई. में उपरोक्त मोनोग्राम का पंजीकरण होने के बाद रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सील रूप में व्यवहृत होने लगा था। द्वितीय बार के विदेश भ्रमण से लौटकर स्वामीजी ने अधिवक्ताओं से परामर्श करके ३० जनवरी, १९०१ बेलूड़ मठ को देवोत्तर ट्रस्ट बनाकर ट्रस्ट के सदस्य के रूप में अपने ग्यारह गुरुभाइयों को नियुक्त किया। एक सप्ताह पश्चात् ट्रस्ट का पंजीकरण ६ फरवरी को हुआ। स्वामी ब्रह्मानन्द, अध्यक्ष और स्वामी सारदानन्द, सचिव पद पर नियुक्त हुए। ट्रस्ट के शेष सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं – स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी रामकृष्णानन्द, स्वामी अद्वैतानन्द, स्वामी सुबोधानन्द, स्वामी अभेदानन्द और स्वामी तुरीयानन्द। ट्रस्ट-डीड (न्यास-विलेख) में न्यासीगण द्वारा संघ का अध्यक्ष चुन लेने का प्रावधान था। न्यास-विलेख बन जाने के पश्चात् स्वामीजी ने स्वयं को संघाध्यक्ष के पद से अलग कर लिया और स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज १२ फरवरी, १९०१ को संघाध्यक्ष के पद पर आसीन हुए।

रामकृष्ण संघ के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है – रामकृष्ण सम्मेलन १९२६ (Ramakrishna Convention 1926) का बेलूड़ मठ में आयोजन की घटना ध्यान देने योग्य है। श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के लगभग चालीस वर्ष बीत जाने पर संघ का विस्तार, क्रियाशीलता व गतिविधियों की विविधता बढ़ती गई, जिससे संघ के संन्यासीगण एवं भक्तगण पारस्परिक वार्तालाप हेतु एक बृहत् सम्मेलन आयोजित करने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। इस उद्देश्य से २ जून, १९२५ ई. को रामकृष्ण मिशन की एक विशेष बैठक बुलाई गई। बैठक में संघ के सदस्यों एवं भक्तों का एक महासम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया गया। बैठक में उपस्थित सभी सदस्यों ने प्रसन्नता व्यक्त की। क्योंकि इसके माध्यम से परस्पर विचार विनिमय, अपने आदर्श के प्रति श्रद्धा को दृढ़ करने, भ्रातृत्व एवं सहयोग की भावना को घनीभूत करने का सुअवसर मिलेगा। अत: सम्मेलन के आयोजन हेतु एक उपसमिति गठित की गई। उपसमिति ने सम्मेलन में उपस्थित होने के लिए 'श्रीरामकृष्ण' और 'स्वामी विवेकानन्द' के आदर्श पर कार्य कर रही संस्थाओं और रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ से सम्बन्धित संस्थाओं की सूची बनायी। इसमें मठ के अध्यक्ष एवं सचिव के इच्छानुसार कुछ और संस्थाओं को भी सूची में स्थान दिया गया। उप-समिति ने कार्यक्रम में होनेवाले अर्थ–व्यय का आकलन किया तथा उपस्थित होनेवाली सभी संस्थाओं को इस विषय पर अपने सुझाव आदि भेजने हेतु २ अगस्त, १९२५ अगस्त को सूचना भेजी। बहुत-सी संस्थाओं ने अपने सुझाव भेजे, जिन्हें समाविष्ट करते हुए

उप-समिति ने विस्तृत विवरणी २ अक्तूबर, १९२५ को Extraordinary General Meeting में प्रस्तुत की। इस बैठक में उप-समिति के परामर्शानुसार तय किया गया कि सम्मेलन अप्रैल १९२६ ई. के प्रथम सप्ताह में बेलूड़ मठ में आयोजित होगा तथा Reception Committee (स्वागत समिति) बनाकर उसे सम्मेलन सम्बन्धी आगामी कार्य करने का दायित्व सौंपा गया। तदनुसार स्वागत समिति ने 'श्रीरामकृष्ण' और 'स्वामी विवेकानन्द' के आदर्श पर कार्य कर रही संस्थाओं को अपने कार्य का विवरण और सम्मेलन में भाग लेनेवाले सदस्यों का नाम भेजने के लिये लिखा। सम्मेलन के लिये आवश्यक धन की व्यवस्था करना उन दिनों कठिन कार्य था। भक्तों, रामकृष्ण मिशन के प्रति सद्भावना रखनेवालों और उपरोक्त संस्थाओं को निवेदन किया गया एवं सभी ने मुक्तहस्त से इस विषय में सहयोग प्रदान किया। सम्मेलन में भाग लेनेवाले सदस्यों के निवास हेतु मठ के समीप तीन प्रशस्त निवास-स्थान भी मिल गये। भोजन की सुव्यवस्था, स्वास्थ्य के आवश्यकतानुसार जिन्हें जिस प्रकार के व्यंजन दिया जाना चाहिये, उसकी भी व्यवस्था अच्छी तरह से मठ प्रांगण में ही की गई थी। इससे मठवासियों एवं प्रतिनिधियों को आपस में बारम्बार मिलने तथा वार्तालाप करने का पर्याप्त समय मिल जाता था।

गंगा के पूर्व तट पर १००X५० फुट का पुष्पों से सज्जित मण्डप तथा समीपस्थ मण्डप पर श्रीरामकृष्ण की यथार्थ आकार की तथा स्वामीजी व स्वामी ब्रह्मानन्द के छोटे आकार के चित्र शोभायमान हो रहे थे। मंच के उत्तर-पश्चिम कोने पर एक तैलचित्र पर भारत का बड़ा नक्शा एवं इसके साथ अमेरिका और मलेशिया के कुछ राज्य दर्शाये गये थे तथा सम्मेलन सम्बन्धी जानकारी लिखी थी। उपरोक्त नक्शे पर देश-विदेश में रामकृष्ण मठ और मिशन की शाखाएँ दर्शायी गई थीं। नक्शे पर लताओं का जाल-सा बिछा हुआ था, जिसकी जड़ें बेलूड़ में श्रीरामकृष्ण देव के चरणों से निकलती हुई दिखाई गई थीं। बीच-बीच में खिलते हुए पद्मपुष्प रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन की शाखाओं के प्रतीक स्वरूप थे। आनन्द और उत्साह से परिपूर्ण मन लिये सम्मेलन में उपस्थित होनेवाले प्रतिनिधियों का आगमन निर्धारित दिन से दो सप्ताह पहले से ही होने लगा था। देश-विदेश से आये अतिथिगण अपने-अपने अनुभवों को परस्पर आदान-प्रदान करने हेतु आतुर थे। आध्यात्मिकता का भाव मठ के वातावरण को निर्मल बनाये हुए था, जिसे सहज ही सभी अनुभव कर रहे थे। संन्यासी व भक्तों का साहचर्य और इस पवित्र वातावरण का उपभोग करने के लिये कलकत्ता के प्रतिनिधि उन दिनों मठ में ही रह रहे थे। सम्मेलन में सौ से अधिक संस्थाओं ने प्रतिनिधित्व किया था तथा उपस्थित सदस्यों की संख्या लगभग तीन सौ पचास तक हुई थी। संन्यासीगण गेरुआ और ब्रह्मचारी व भक्तवृन्द श्वेत वस्त्रों में इस उत्सव के दृश्य को नयनाभिराम बना रहे थे। कुछ स्वयंसेवी तथा शिक्षा संस्थाएँ एवं प्रचार व प्रकाशन करनेवाली संस्थाएँ पहली बार परस्पर मिल रही थीं। १ अप्रैल को हवन, वैदिक स्तव और भजन से सम्मेलन का शुभारम्भ हुआ, जो ८ अप्रैल तक चला। प्रत्येक दिन सवेरे तथा दोपहर दो सत्रों में सम्मिलित चर्चा होती थी। प्रात:काल सत्र ७ बजे से ११ बजे तक (८.३० बजे आधा घण्टा जलपान), दोपहर का सत्र २.४५ बजे से ५.३० तक। प्रत्येक सत्र सम्मेलन पर आशीर्वाद के लिये ईश्वर की प्रार्थना से आरम्भ होता था। तीन सार्वजनिक सभा के अतिरिक्त प्रत्येक सत्र में मुख्यत: विभिन्न केन्द्रों से आगत प्रतिनिधिगण ही भाग लेते थे। इसलिये सत्रों में लगभग चार सौ श्रोताओं की उपस्थिति होती थी। रामकृष्ण मिशन की वार्षिक साधारण सभा (Annual General Meeting of Ramakrishna Mission) द्वितीय दिन दोपहर में हुई थी, जिसमें लगभग पाँच सौ लोग उपस्थित थे। ३ अप्रैल को प्रथम सार्वजनिक सभा में 'रामकृष्ण मिशन के सिद्धान्त, आदर्श और कार्य', इस विषय पर विस्तृत व्याख्या प्रदान की गई थी, जिसमें लगभग एक सहस्र लोग उपस्थित थे। इस सम्मेलन में सुश्री जोसेफिन मैक्लाउड, श्रीमती सी. फ्रेंच, अमेरिकी ब्युस्टर परिवार (सभी मठ के अतिथि-निवास में रुके हुए थे) की उपस्थिति ध्यान देने योग्य थी। उपरोक्त अमेरिकी अतिथि सभा में पलथी मारकर बैठते थे और बड़े ध्यान से वक्ताओं को सुनते थे। भगिनी निवेदिता बालिका विद्यालय के कार्यरत सदस्य एवं बालिकाओं की उपस्थिति भी दर्शनीय थी। सत्रों में समय अन्तराल की अवधि में संगीत की प्रस्तुति थकावट घटाने में बहुत सहायक होती थी। इस प्रसंग में स्वामी अम्बिकानन्द, स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द, स्वामी रमानन्द तथा श्रीभगवान चन्द्र सेन (मृदंग) और श्री ज्ञानेन्द्र मोहन गोस्वामी के नाम उल्लेखनीय हैं। ४ अप्रैल को हाथीबागान, कलकत्ता की काली कीर्तन मंडली ने कीर्तन गाकर सभी

को मन्त्रमुग्ध कर दिया था। २ अप्रैल को बालि अमाट्योर एथेलेटिक एसोसिएशन ने जिमनास्टिक का चार घण्टे का भव्य प्रदर्शन किया था। ७ अप्रैल को श्री मुरारी मोहन मुखर्जी ने एकल-अभिनय द्वारा अकेले ही सुर और भाव-भंगिमा बदलते हुए एक सम्पूर्ण नाटक को प्रस्तुत किया। स्वामी शिवानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी विज्ञानानन्द, स्वामी निर्मलानन्द और अन्य सदस्यों ने सम्भाषण के माध्यम से अनेक लाभदायक उपदेश, निर्देश आदि दिए। सन्ध्या आरती के पश्चात् मठ प्रांगण में ठाकुर की आध्यात्मिक अनुभूतियों और उनके त्यागी शिष्यों की तपस्या से अर्जित अनेक दुर्लभ अनुभवों के बारे में प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्राप्त ज्ञानराशि प्रतिनिधियों की सबसे अधिक मूल्यवान सम्पदा थी। प्रश्नों का मानो अन्त ही न होता था और दिव्य अनुभूतिसम्पन्न ठाकुर के शिष्यों के प्रेमपूर्ण मनोभाव से कहे गये उत्तर सभी तन्मय होकर सुनते थे।

स्वामी सारदानन्द जी महाराज

स्वामी सारदानन्द ने अपने प्रथम व्याख्यान में कहा था – 'इस प्रकार के सम्मेलन वैदिक युग में भी आयोजित होते थे। बौद्ध और ईसाई धर्म के अनुयायियों द्वारा ऐसे सम्मेलन आयोजित करने की घटना इतिहास में पाई जाती है। इससे संघ-जीवन की नींव दृढ़ होती है, संघबद्ध होकर कार्य करने में होनेवाली त्रुटियों का निराकरण होता है और संन्यासीगण व प्रचारकों में नये उत्साह का संचरण होता है।' आधुनिक युग में स्वयं ईश्वरावतार श्रीरामकृष्ण देव द्वारा आरम्भ किये गये, उनकी महासमाधि के चालीस वर्ष पश्चात्, इस प्रकार सम्मिलित होकर परस्पर चर्चा करना संघ के लिये अत्यावश्यक था। तदुपरि ठाकुर के त्यागी शिष्यों द्वारा मार्ग-दर्शन पाना किसी भी संन्यासी एवं भक्त के लिये परम सौभाग्य का अवसर था। इस प्रकार उच्च आध्यात्मिक ज्ञानसम्पन्न अधिकारी पुरुषों द्वारा संघीय जीवन की परम्परा और भी स्पष्ट रूप से अधीत करना परवर्ती काल की पीढ़ियों के लिये अपरिहार्य था। इस सम्मेलन में स्वामी सारदानन्द की उपस्थिति सौभाग्यपूर्ण थी। क्योंकि स्वामी विवेकानन्द द्वारा संघ को १ मई, १८९७ ई. औपचारिक रूप से आरम्भ करने के पश्चात् उन्होंने स्वामी सारदानन्द को अमेरिका से लौटने का निर्देश दिया था और संघ के दृढ़ मेरुदण्डस्वरूप स्थित होकर इसके प्रत्येक कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने का दायित्व दिया था। उस समय की कठिन परिस्थिति में व्यतीत किये हुए अठाईस वर्ष के अनुभवों के विशाल भंडार से उन्होंने सम्मेलन में आये हुए संन्यासियों एवं भक्तों को उन्मुक्त हृदय से बहुमूल्य तथ्य और संघ के कार्य को सुचारु रूप से चलाने हेतु उपयुक्त दिशा-निर्देश प्रदान किये थे। सारदानन्द महाराज वर्तमान युग में संन्यासी संघ के लिये कुशल प्रशासक का आदर्श हमारे सम्मुख रख गये हैं। १९ अगस्त, १९२७ ई. को सारदानन्द महाराज की महासमाधि से पूर्व इस सम्मेलन में उनका सान्निध्य मानो सभी के लिये वरदान स्वरूप प्रमाणित हुआ था।

प्रस्तुत लेख रामकृष्ण संघ के आरम्भ के पाँच मुख्य स्थानों का संक्षिप्त वर्णन था। उपरोक्त अवधि में भारत तथा विदेश में संघ की कई शाखाओं की स्थापना हुई थी। भक्तगण सन्दर्भ ग्रन्थों में इस विषय पर अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण देव एवं श्रीमाँ सारदा देवी के जन्मस्थानों, क्रमशः कामारपुकुर और जयरामवाटी, के आरम्भ होने तथा क्रमविकास का भी इतिहास रोचक और जानने योग्य है। विदेश के कुछ प्रमुख केन्द्र स्वामीजी द्वारा विदेश में वेदान्त प्रचार के कारण आरम्भ हुए थे और तत्पश्चात् उनके गुरुभाइयों के उद्यम से विकसित हुए थे। स्वामीजी की विशेष रूप से अभिलाषा थी कि हिमालय की तराई में केन्द्र स्थापित हो। तदनुरूप उत्तराखण्ड प्रदेश के मायावती में अद्वैत आश्रम की स्थापना की गई। वर्तमान समय के उपलब्ध आधुनिक संसाधनों तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नत अवस्था में किसी भी विषय के बारे तथ्य संग्रह करना सहज हो गया है। अतः निवेदन है, इच्छुक भक्त रामकृष्ण संघ के विकास की गाथा अवश्य पढ़ें। ○○○ **(समाप्त)**

साधुओं के पावन प्रसंग (५८)

स्वामी प्रभवानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज

स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज की स्मृति

मेरे बेलूड़ मठ में सम्मिलित होने के ठीक बाद ही मैंने देखा कि स्वामी प्रेमानन्द जी एक तरुण संन्यासी को बहुत जोर से डाँट-फटकार कर रहे है। मैंने मन ही मन सोचा, 'आहा, इस तरह साधु भी क्रोध करते हैं।' यह विचार मेरे मन में उठते ही उठते स्वामी प्रेमानन्द जी ने अकस्मात् मेरी ओर देखा और हँसा। तब मैंने जाना उनका यह क्रोध स्वाभाविक क्रोध नहीं है, परन्तु हमलोगों को शिक्षा देने के लिए यह क्रोध था। उसी समय से उनके द्वारा हमलोगों को डाँटने पर मैं कभी भी विचलित नहीं होता था। परन्तु एक अद्भुत स्फूर्ति का अनुभव करता था और उनकी डाँट-फटकार को आशीर्वाद मानता था।

वाराणसी में १९१४ ई. में अक्तूबर महीने में एक घटना घटी। वहाँ रहते समय स्वामी प्रेमानन्द जी गंगा-स्नान के बाद बाबा विश्वनाथ और माँ अन्नपूर्णा का दर्शन करते थे। मैं भी उनके साथ रहता था। एक दिन, माँ अन्नपूर्णा के मन्दिर में हमारी पूजा समाप्त होने के बाद बड़े पुरोहित ने एक गेंदा के फूल की माला स्वामी प्रेमानन्द के गले में पहना दिया। उन्होंने जब माला अपने गले से निकालकर मुझे देना चाहा, तब हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनको कहा, "महाराज, मत निकालिए, माला आपके गले में ही रहे। आप बहुत सुन्दर दिख रहे हैं !" 'सुन्दर' शब्द से उनके मन में भगवत् सौन्दर्य का उद्दीपन हुआ और वे भावाविष्ट हो गये। उनका मुखमण्डल उद्भासित होकर पूरे शरीर से एक दिव्य ज्योति निकलने लगी। धीरे-धीरे वे मन्दिर से बाहर निकले, मैंने उनका अनुसरण किया। मन्दिर की गली में यथापूर्व भीड़ थी, रास्ते में दोनों ओर के लोगों ने उनकी ओर देखकर उनके लिए रास्ता छोड़ दिया। यह बात बहुत सत्य है कि लोग उनकी उज्ज्वल मूर्ति को देख रहे थे। हमलोग वाराणसी के रास्ते से आगे चले और रास्ते की जनता वहाँ पर नि:शब्द स्वामी प्रेमानन्द जी की ओर देखती रही। वे ईश्वरचिन्तन में पूरी तरह से लीन तथा पारमार्थिक जगत की बातें पूरी तरह से विस्मृत हो गये थे। जब हमलोग मठ के बाहर फाटक के पास पहुँचे, तब मठाध्यक्ष स्वामी निर्वाणानन्द ने बरामदा से हमें देखा। उन्होंने उसी समय मठ के संन्यासियों को स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज के लिए विशेष स्वागत की व्यवस्था करने के लिए कहा। हमलोगों के मठ-प्रांगण के भीतर आते ही काँसर, घण्टा, शंख के शब्द गूँज उठे। हमलोग जब बरामदा के नीचे आये, तब स्वामी प्रेमानन्द जी ने माला को निकालकर मठाध्यक्ष के गले में पहना दिया। कुछ समय के लिए प्रेमानन्द महाराज ने भावानन्द में नृत्य किया। धीरे-धीरे वह भाव क्षीण हो गया और वह दिव्य दीप्ति लुप्त हो गयी।

स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज

कहा जाता है कि जौहरी ही जौहरी को पहचानता है। उसी प्रकार प्रबुद्ध आत्मा ही दूसरे प्रबुद्ध आत्मा को अच्छी तरह से समझ सकती है तथा उसका सम्मान करती है। यह बात सत्य हुई थी श्रीरामकृष्ण-पार्षदों के बीच परस्पर अपार प्रेम और प्रीति के द्वारा।

स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज ने उस समय कई वर्षों के बाद एक-दूसरे का दर्शन किया, तब दोनों ने एक-दूसरे को साष्टांग प्रणाम किया। स्वामी तुरीयानन्द जी पहले उठे। उन्होंने कहा, ''भाई, विनम्रता में तुमको कोई भी नहीं हरा पायेगा।''

एक दिन मेरे सामने ही स्वामी प्रेमानन्द जी ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से कहा, ''आओ, हमलोग इस गेरुआ वस्त्र से मुक्ति लें। यह तो हमारे संन्यास का विज्ञापन है।'' वे वैराग्य के इतने उच्च भाव में थे कि संस्कार प्रसिद्ध संन्यासाश्रम के चिह्नस्वरूप गैरिक वस्त्र भी उनके लिए पूर्ण आत्मविलुप्त के मार्ग में बाधास्वरूप लगता था।

स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज बहुत कौतुक स्वभाव के थे। वे स्वामी प्रेमानन्द जी के साथ परिहास करते समय आनन्द से मुझे भी सम्मिलित करते थे। एक बार जब मैं महाराज की चरण-सेवा कर रहा था, तब उन्होंने धीरे-धीरे मुझसे कहा, ''पास के कमरे में बाबूराम भाई के पास जाओ और उनका पैर दबा कर आओ।'' दूसरी ओर स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज दूसरों की सेवा लेना पसन्द नहीं करते थे और कभी भी मुझे अपना पैर दबाने नहीं देते थे। किन्तु यह महाराज का आदेश है, उसे पालन करूँगा, ऐसा निश्चय किया (मेरी उम्र उस समय अठारह वर्ष थी)। मैं प्रेमानन्द महाराज के कमरे में गया और दरवाजा खोला। महाराज चादर ओढ़कर अपनी चौकी पर सोये हुए थे। मैं उनका एक पैर दबाने लगा। स्वामी प्रेमानन्द जी ने कहा, ''चले जाओ ! मैं पैर दबवाना नहीं चाहता। महाराज के पास जाओ !'' किन्तु मैंने उनकी आपत्ति नहीं सुनी। मैं फिर उनका पैर अपने पास में लाकर दबाने लगा और समझाकर कहा, ''महाराज ने ही मुझे यह कार्य करने के लिए कहा है।'' इसी प्रकार कुछ समय तक चला। प्रत्येक बार ही वे मुझे मना कर रहे हैं और प्रत्येक बार ही मैं उनको कह रहा हूँ कि मुझे महाराज का आदेश मानना ही होगा। अन्त में वे आराम से सो गये और मैंने अच्छी तरह से उनका पैर दबाया। उनकी चरण-सेवा करने के लिए उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

''१९१५ ई. के प्रारम्भ में रामकृष्ण मठ के न्यासियों की एक सभा की बात स्मरण है। महासचिव स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने उद्बोधन कार्यालय से आकर मुझसे पूछा, ''बाबूराम भाई कहाँ हैं?'' मैंने बताया, ''वे ऊपर ठाकुर मन्दिर में हैं।'' स्वामी सारदानन्द जी धीरे-धीरे चलते हुए ऊपर गये। मैं उनके पीछे-पीछे गया। मन्दिर के एक कोने में बैठकर स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज ध्यानमग्न थे। स्वामी सारदानन्द जी हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले थे। वे गुरुभाई की पतली स्थिर मूर्ति को उतारकर नीचे ले आये। प्रेमानन्द जी महाराज खड़े होकर भाव में नृत्य करने लगे। राजा महाराज, तुरीयानन्द, सारदानन्द, शिवानन्द और सुबोधानन्द जी इत्यादि भी नृत्य में सम्मिलित हुये। राजा महाराज बीच में नृत्य कर रहे थे और गुरुभाई लोग गोल होकर उनको घेरकर नृत्य कर रहे थे। समस्त वातावरण उनलोगों के आध्यात्मिक भाव से स्पन्दित हो रहा था। उनलोगों ने एक घण्टा तक नृत्य-संगीत किया। ऐसा लग रहा था कि ये लोग समग्र मानवजाति को मुक्त होने के लिए और भागवतानन्द में भाग लेने के लिए पुकार रहे हों।

काशी जाते समय मैं राजा महाराज के लिए दो बोतल Welch's grape juice लेकर गया था। उस grape juice को देखकर महाराज ने मुझे एक ग्लास लाने के लिए कहा और उसमें grape juice डालकर कहा, ''यह ग्लास तुम अद्वैत आश्रम में स्वामी प्रेमानन्द के पास लेकर जाओ और कहना, महाराज कोलकाता की सबसे अच्छी शराब आपके लिए लाया हूँ।'' राजा महाराज के आदेशानुसार मैं वह ग्लास लेकर बाबूराम महाराज के पास गया। उन्होंने कहा, ''चलो जाओ, यहाँ से भागो।'' किन्तु मैंने नहीं छोड़ा। वे कुर्सी छोड़कर चल दिये। मैं उनके पीछे-पीछे चला। वे जब बगीचे के अन्त में पहुँचे, तब महाराज वहाँ पर आये। महाराज ने कहा, ''बाबूराम भाई, उसको पीने में क्या हानि है? अवनी आपके लिए कोलकाता से grape juice ले आया है।'' प्रेमानन्दजी ने कहा ''ओह, बेटा ने तो मुझे ऐसा नहीं बताया।'' इसी प्रकार राजा महाराज गुरुभाइयों के साथ हास-परिहास करते थे। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मठ

भट्ठा बाजार, पूर्णिया (बिहार) 854301

(A Branch centre of Ramakrishna Math, Belur Math, Howrah,W.B.)
Email : purnea@rkmm.org, ph : 9588986194, 9462896477

Website : https://purnea.rkmm.org; You Tube : purnearamakrishnamath 7405

सादर विनम्र निवेदन

रामकृष्ण मठ, पूर्णिया सन् 2020 से औपचारिक रूप से कार्यरत है। यह आश्रम सन् 1927 में श्रीमाँ सारदा के एक मंत्र शिष्य महादेवानन्द जी महाराज के द्वारा प्रारम्भ किया गया। यहाँ पहली बार बासन्ती दुर्गापूजा पूज्य राममय महाराज (स्वामी गौरीश्वरानन्द जी) ने किया। उसमें तंत्रधारक स्वामी गदाधरानन्द जी (महापुरुष महाराजजी के शिष्य) थे। चूँकि मन्दिर को छोड़कर बाकी सभी संरचनायें बहुत पुरानी व जीर्ण हो गयी हैं, इसलिए एक मास्टर प्लान बनाया गया है जिसके पूरे होने पर मठ की इस शाखा में मानव सेवा के अनेक प्रकल्प इस सीमांचल में आसानी से किये जा सकेंगे। इनके चार मुख्य भाग हैं –

क्र.	नवीन परियोजनाएँ	मंजिल	नि. क्षेत्रफल (वर्ग मी.)	अनुमानित लागत
1.	भक्त निवास	3	545.739	रु. 2.19 करोड़
2.	ऑफिस व छात्र अध्ययन कक्ष	2	882.756	रु. 4.07 करोड़
3.	साधु निवास	3	1195.425	रु. 4.76 करोड़
4.	पूजा भंडार, सेवक निवास औषधालय, शौचालय	1	191.17	रु. 77.29 लाख

इनके अतिरिक्त, नित्यपूजा और देवसेवा (सभी धार्मिक अनुष्ठानों में), बासंती दुर्गापूजा, साधु-सेवा, भक्त-सेवा, होमियोपैथी डिस्पेंसरी, सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र, निःशुल्क पुस्तकालय व वाचनालय, यूथ ओरिएन्टेशन (युवा-अभिविन्यास) (इसमें सभी प्रकार के बालक और युवा चरित्र-गठन व प्रोत्साहन के कार्य सम्मिलित होंगे)। इनको ठीक से चलाने हेतु आवश्यक अनुमानित राशि रु. 50 लाख।

कुल अनुमानित धनराशि रु. 12.3 करोड़

हम सभी से आह्वान करते हैं कि आप सहृदय होकर उदारतापूर्वक अपने परिश्रम से उपार्जित धन का अंश दान कर रामकृष्ण मठ के नवनिर्माण रूपी स्वामी विवेकानन्द जी के इस मानव सेवा प्रकल्प में सहयोग करके कृतार्थ होंवे। सभी छोटे-बड़े दान सधन्यवाद स्वीकृत होंगे और उनकी पावती दी जायेगी।

हमारी वेबसाइट पर अपील का पूरा विवरण देखें। वेबसाइट पर भी ऑनलाइन दान दे सकते हैं। दान के पश्चात् हमारे ईमेल **purnea@rkmm.org,** पर दान का मद व अपना पूरा पता लिखें और पैन/आधार/वोटर कार्ड की एक स्कैन/फोटो कापी (केवल एक बार) भेजें। मठ को दिये गये सभी दान **80-G** के अन्तर्गत करमुक्त है ।

हमारे बैंक का विवरण इस प्रकार है : - **RAMAKRISHNA MATH PURNEA**

PNB (MATH) A/C 0051010238472, IFSC : PUNB0005120

& SBI (BAZAR) A/C 38921582355, IFSC : SBIN0001236

UPI ID : ramkrishnamath4095@sbi

भगवान श्रीरामकृष्ण माँ सारदा और स्वामीजी की विशेष कृपा मानवता की सेवा में रत सभी पर हो।

सभी में भगवत्सेवाभिलाषी, आपका

श्रीरामकृष्ण चरणाश्रित

स्वामी जितेन्द्रानन्द

अध्यक्ष

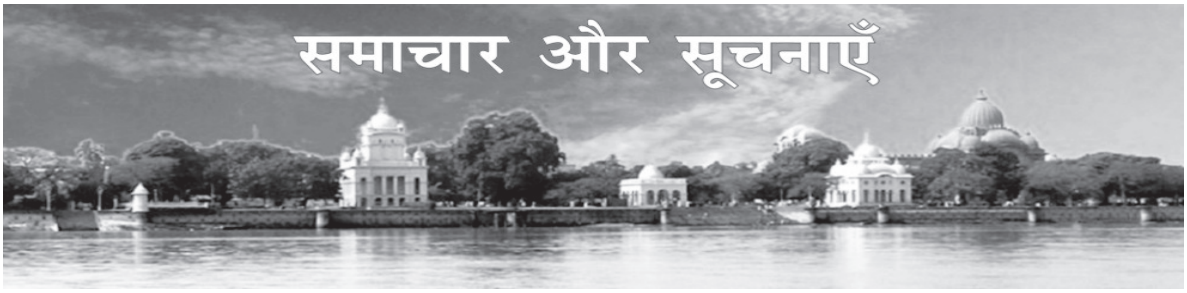

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में 'विवेकानन्द अध्ययन केन्द्र' का उद्घाटन रामकृष्ण मठ और मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने किया

१३ अगस्त, २०२३ को १० बजे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में **'विवेकानन्द अध्ययन केन्द्र'**

का उद्घाटन रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव **स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज** द्वारा किया गया। इसके साथ ही रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य के एक युवा-सम्मेलन का आयोजन भी आश्रम के सत्संग भवन में किया गया। सम्मेलन के विशेष अतिथि थे रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज और इसकी अध्यक्षता की थी मैट्स और बस्तर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. एस. के. सिंह जी ने। इसके अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने युवाओं को सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने स्वागत भाषण किया। मंच का संचालन स्वामी देवभावानन्द और धन्यवाद ज्ञापन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन में पी.ई.टी.सीटी स्केन मशीन का उद्घाटन हुआ

२६ जुलाई, २०२३ को २ बजे रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन में कैंसर रोगियों के लिये पी.ई.टी. सीटी स्कैनर मशीन का उद्घाटन उत्तरप्रदेश के यशस्वी मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ जी ने किया। उद्घाटन और लोकार्पण समारोह रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम के सन्तों के वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ प्रारम्भ हुआ। मुख्यमन्त्रीजी ने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा के समक्ष दीप-प्रज्ज्वलन और पुष्प अर्पण किया। उसके बाद वे सेवाश्रम के चिकित्सालय में विद्यमान सुविधाओं का अवलोकन करते हुये नव-निर्मित पी.ई.टी सीटी स्कैन लैब पहुँचे। वहाँ मुख्यमन्त्रीजी ने रामकृष्ण मिशन के सन्तों की पावन उपस्थिति में पी.ई.टी. सीटी स्कैनर मशीन का लोकार्पण किया और चिकित्सकों से मशीन की उपयोगिता और विशेषताओं पर चर्चा की।

कार्यक्रम का शुभारम्भ विवेकानन्द प्रेक्षागृह में राष्ट्रगान से हुआ। मुख्यमन्त्री आदित्यनाथजी ने 'राधे राधे' 'वृन्दावन विहारीलाल की जय', 'यमुना मैया की जय' और 'भारत माता की जय' के जयघोष से प्रारम्भ कर बड़ा ही प्रेरक व्याख्यान दिया। कार्यक्रम में रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव, स्वामी तत्त्वविदानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन के सचिव स्वामी सुप्रकाशानन्द, स्वामी कालीकृष्णानन्द, स्वामी गीतेशानन्द, स्वामी ओजोमयानन्द, कोटक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड के उपाध्यक्ष आर. वरदराजन् आदि उपस्थित थे। स्वामी देवतानन्द ने धन्यवाद ज्ञापित किया।